समीक्षा । [पुस्तकालय में रख दी गई । **देखिये संख्या ४ यू० ए० (७५)**]

(२) १९५०-५१ के लिये भारत में रेलों का विनियोग लेखा । भाग २—विस्तृत विनियोग लेखा । [पुस्तकालय में रख दी गई । **देखिये संख्या ४ यू० ए० (७५)**]

(३) भारत सरकार की रेलों का अवरुद्ध लेखा (ऋण लेखे के पूंजी विवरण सहित), सन्तुलन पत्र और लाभ तथा हानि का लेखा, १९५०-५१ । [पुस्तकालय में रख दी गई । **देखिये संख्या ४ यू० ए० (७५)**]

(४) १९५०-५१ के लिये रेल कोयला खानों का सन्तुलन-पत्र और कोयले के सम्पूर्ण व्यय इत्यादि के विवरण । [पुस्तकालय में रख दी गई । **देखिये संख्या ४ यू० ए० (७५)**]

(५) रेलों का लेखा परीक्षा प्रतिवेदन, १९५२ (भाग २) । [पुस्तकालय में रख दी गई । **देखिये संख्या ४ यू० ए० (७६)**] ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति सम्बन्धी प्रस्ताव

प्रधान मंत्री तथा वैदशिक-कार्य व रक्षा मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) : मैं प्रस्ताव पास करता हूं कि :

"वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और तत्सम्बन्धी भारत सरकार की नीति पर विचार किया जाये ।"

इस संसद् के लगभग सभी सत्रों में इस विषय पर वादविवाद हुआ है और सदन ने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के सम्बन्ध में भारत सरकार की सामान्य नीति का अनुमोदन किया है । प्रत्येक सत्र में काफी प्रश्न पूछे जाते हैं जिन से यह पता चलता है कि माननीय सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में कितनी रुचि लेते हैं । इस सदन द्वारा इन महत्वपूर्ण मामलों में जिन का हमारे देश और सारे विश्व पर प्रभाव पड़ता है, सक्रिय रूप से जो रुचि दिखाई गई है और जिस प्रकार से सदन ने इस का समर्थन किया है वह वस्तुतः सराहनीय है ।

आज कल अन्तर्राष्ट्रीय मामले केवल कुछ चुने हुए कूटनीतिज्ञों का विषय नहीं रहे हैं । उन्हें विशेष रूप से इस सदन को और मैं तो यह भी कहूंगा कि जन-साधारण को भी समझना चाहिये—उन की पेचीदगियों को नहीं, अपितु उन के पीछे जो नीति काम कर रहा है उसे समझना चाहिये, क्योंकि आज कल अन्तर्राष्ट्रीय मामले जन-साधारण के जीवन का भी बहुत महत्वपूर्ण अंग बन गये हैं । उन के कारण युद्ध हो सकता है, उन से और बहुत-सी घटनायें घट सकती हैं जो कि युद्ध के समान ही बुरी हैं और जिन का हम सब के जीवन पर प्रभाव पड़ सकता है ।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलों या विदेश नीति को एक विषय मान कर उस के सम्बन्ध में 'हां' या 'न' में कुछ कहना बहुत सरल है । निस्सन्देह, सदन को यह विदित है कि यह उस से कहीं अधिक जटिल प्रश्न है और सत्य यह है कि विदेश नीति के यद्यपि कुछ निश्चित आदर्श और उद्देश्य होने चाहिएं, तथापि यह बहुत-सी विदेश नीतियों से मिल कर बनती है यह कोई एक चीज नहीं है—क्यों कि विश्व हमारी इच्छा के अनुसार तो नहीं चलता । विभिन्न

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती हैं और भिन्न भिन्न हित होते हैं और हमें इस मूल नीति को ध्यान में रखते हुए अपने आप को उन के अनुसार ढालना पड़ता है । इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में बड़ा विचित्र परिवर्तन होता है । इस में कुछ सैद्धान्तिक जोश-सा है, उन में कुछ पुरानी धार्मिक कट्टरता सी दिखाई देती है, कुछ पुराना बटवारा-सा दिखाई देता है कि "या तो तुम हमारे साथ हो, या हमारे विरुद्ध हो" और इसीलिये हमें यह संकुचित मनोवृति दिखाई देती है जिसके कारण लोग प्रत्येक बात पर इस दृष्टि से विचार करतें हैं कि "जो हमारे साथ हैं या जो हमारे विरुद्ध हैं" और प्रत्यक बात को उस पुरानी धार्मिक कट्टरता से देखते हैं जिस के कारण भूतकाल में इतनी लड़ाइयां हुई और उसमें धर्म की अच्छाइयों का नाम निशान तक नहीं है।

अन्तर्राष्ट्रीय मामले अब कुछ मुसभ्य कुटनीतिज्ञों की गुप्त चर्चा की चालों तक ही सीमित नहीं रहे हैं, परन्तु इस में कठोर बातें कही जाती हैं, एक दूसरे को निरन्तर धमकियां दी जाती हैं और जहां तक इस विश्व का सम्बन्ध है हम सदा आशा और आशंका के बीच की डावांडोल स्थिति में रहते हैं। कुछ लोग यह समझते हैं कि प्रत्येक देश की नीति 'सुदृढ़' होनी चाहिये--सुदृढ़ नीति का यह अर्थ लिया जाता है कि हमें यथासम्भव अधिक से अधिक भयंकर और खूंखार बन कर रहना चाहिए, सब को धमकियां देनी चाहिएं और यह कहना चाहिये कि यदि वे हमारी इच्छानुसार नहीं चलेंगे तो हम उन्हें दण्ड देंगे । [illegible] ऐसी बात एक सार्वजनिक सभा में अच्छी लग सकती है और इस पर तालियां बज सकती हैं, परन्तु इस से वस्तुतः राजनैतिक विचारों या समझ की अपरिपक्वता प्रकट होती है । हम जैसे प्रबुद्ध राष्ट्र (**एक माननीय सदस्य** : वाह, वाह) इस प्रकार से आचरण नहीं करते। हमें चीज़ों को अच्छे प्रकार समझने का प्रयत्न करके, उन में सन्तुलन स्थापित करने का प्रयत्न करके और उन में बाधा न डाल कर उन्हें हल करने में सहायता कर के अपनी विचारशीलता का परिचय देना चाहिए। इन सब बातों के कारण हमारे विशेष रूप से विदेश नीति के लिये उत्तरदायी व्यक्तियों के विचार अभिव्यक्त करने पर कुछ बन्धन लगे हुए हैं, क्योंकि एक ओर तो मैं इस सदन और अपने देश के समक्ष यथासम्भव अधिक से अधिक स्पष्ट रूप से अपनी नीति के बारे में कुछ कहना चाहूंगा और दूसरी ओर मैं कोई ऐसी बात नहीं कहना चाहूंगा जिस से किसी देश को अनावश्यक रूप से परेशानी हो या क्रोध आये--मैं उस देश से सहमत हूं या असहमत हूं यह दूसरी चीज है--क्योंकि मैं समझता हूं कि हमारे नई दिल्ली में दूसरे देशों की नीतियों के विरुद्ध क्रोध प्रकट करने से अपने देश या विश्व का हित साधन नहीं होगा। स्वभाविकतया, जहां हमारा उन के साथ मौलिक मतभेद होगा, हम अपना सहमति या असहमति का दृष्टीकोण व्यक्त करेंगे। घटनाचक्र बहुत तेजी से चल रहा है। मुझे यह नहीं मालूम कि [illegible] इस कारण हो रहा है कि हम एक ऐसे युग में रहते हैं जो कि एक औद्योगिक क्रान्ति की समाप्ति का युग है जिसे आरम्भ हुए सौ या दो सौ वर्ष हो चुके हैं। परन्तु आप इस घटनाचक्र को औद्योगिक युग की उस आधुनिक सन्तान का एक प्रतीक समझें जो कि निरन्तर अणुबम, हाइड्रोजन बम की बातें करते रहते हैं और कुछ लोग तो

कोबाल्ट बम की बातें भी करने लगे हैं। इस सब का अर्थ यह है कि मानवता निरन्तर भयभीत और आशंकित है और विचित्र बात तो यह है कि इस के साथ ही मानवता को एक और अधिक अच्छे जीवन की आशा है। हमारे समक्ष कुछ असाधारण चीज़ें हैं और विश्व को इन दोनों में से किसी एक को चुनना है। जैसा कि मैं ने कहा इन में से केवल एक को चुना जा सकता है। परन्तु कोई इस बात का निश्चय नहीं कर सकता कि युद्ध को चुना जाये या शान्ति को।

दो दिन पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ की महा सभा का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ था और उन के सामने बहुत महत्वपूर्ण समस्यायें हल करने को हैं। इस सम्बन्ध में मैं एक बात कहना चाहता हूं और मुझे निश्चय है कि सदन का भी यही मत है कि हमें इस बात से प्रसन्नता हुई है कि इस सदन की एक सदस्या संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा की प्रधान चुनी गई हैं और विशेष रूप से भारतीय महिलाओं की प्रतिनिधि को यह सम्मान प्राप्त हुआ है।

विदेशी मामलों पर विचार करते समय हमें स्वभाबिकतया उन मामलों में विशेष रुचि होती है जिन का हमारे पर बहुत प्रभाव पड़ता है, चाहे यह दक्षिण अफ्रीका में भारतीय उद्भव के लोगों के साथ व्यवहार का पुराना प्रश्न हो या भारतीय उद्भव के लोगों के साथ श्री लंका में व्यवहार का प्रश्न हो या समुद्र पार के भारतीयों की ऐसी ही समस्यें हों। हमें उन में रुचि है। क्योंकि हम इन हज़ारों लोगों के भाग्य की चिन्ता है जो कि यद्यपि अब भारत के नागरिक या राष्ट्रजन नहीं हैं, किन्तु पहिले उन का भारत से सम्बन्ध था, जिन के सम्बन्ध में हम ने विभिन्न करार या आश्वासन प्राप्त किये हुए हैं और इसलिये हमारा उन के प्रति कुछ उत्तरदायित्व है यद्यपि वे हमारे राष्ट्रजन नहीं हैं। इन समस्याओं में सदन को रुचि है और आगे भी रहेगी।

इस के अतिरिक्त भारत में विदेशी बस्तियों की समस्या है और सदन तथा देश इन के प्रति अब धैर्य खो चुका है और इन को सुलझाने में अब अधिक विलम्ब नहीं चाहता। यह सत्य है। किसी को यह पसन्द नहीं है। हम इसे अब केवल राजनैतिक दृष्टि से ही पसन्द नहीं करते, अपितु और भी बहुत से कारणों से पसन्द नहीं करते, ये चौर्यानियन, षड्तन्त्र और गड़बड़ के अडडे बन गये हैं और शान्ति काल में भी खतरे का स्थान हैं। और मान लीजिये, दुर्भाग्य से विश्व के किसी भाग में यदि युद्ध छिड़ जाये, तो ये और भी अधिक खतरे का स्थान बन सकते हैं। हम इस सदन में बिलकुल स्पष्ट रूप से यह कह चुके हैं कि यदि कहीं युद्ध छिड़ा चाहे यह किसी के बीच में भी हो—जहां तक हमारा सम्बन्ध है, हम भारत के किसी भी भाग को और इस में वे भाग भी सम्मिलित हैं जिन्हें भारत की विदेशी बस्तियां के नाम से पुकारा जाता है, उस युद्ध में किसी भी प्रकार से सम्मिलित नहीं होने देंगे।

मैं यह बात बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि यदि इन स्थानों का प्रयोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, युद्ध के सम्बन्ध में किया गया तो हमें उसे रोकने के लिए कार्यवाही करनी पड़ेगी। यह तो स्पष्ट है कि मैं यह धमकाने के लिए नहीं कह रहा हूं परन्तु इसलिए कि कुछ बातें स्पष्ट कर देना अच्छा होता है ताकि

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

दूसरे लोगों को पता रहे कि वह जो करना चाहते हैं उसका परिणाम क्या होगा ।

इस के बाद मुझे सदन को इस सम्बन्ध में भी अपने विचार बताने हैं कि हमें इन समस्याओं को मूल रूप से, ब्योरेवार नहीं, कैसे निपटाना चाहिए । अर्थात् हमारे लिए कड़ी कार्यवाही की बात करना बहुत आसान है और ऐसी कार्यवाही का महत्व सीमित रूप से देखना भी कठिन नहीं है । परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ भी सीमित नहीं है, विशेषतया उस स्थिति में जब कि इन बस्तियों का सम्बन्ध छोटे बड़े विदेशी राष्ट्रों से है । उस स्थिति में परिणाम बहुत दूरगामी होंगे । मेरा विचार है कि सदन इस बात में मेरे साथ सहमत होगा कि केवल अपनी अधीरता और बेचैनी के कारण कोई कार्यवाही कर बैठने से, जिस के कि दूरगामी परिणाम हों, और जिस के कारण हम कठिनाइयों में पड़ जायें इस प्रश्न का वह हल नहीं होगा जो कि हम चाहते हैं । अन्ततोगत्वा, शान्ति का रास्ता, चाहे उकता देने वाला हो, शीघ्र फल देने वाला है और फिर इस पर चलने में सन्ताप नहीं होता जोकि युद्ध में जीतने वाले राष्ट्रों को भी भोगना पड़ता है ।

इसलिए मेरा विचार है कि हम ने अपनी नीति की घोषणा में इन विदेशी बस्तियों के सम्बन्ध में दृढ़ता से काम लिया है । हम ने उस नीति का अनुसरण करते समय शान्ति से काम लिया है और ऐसी कार्यवाहियां नहीं की हैं जिन्हें मैं शान्ति पूर्ण नहीं कहता । हम इन से सम्बद्ध प्रश्नों की ओर पूर्णतया सजग हैं । शान्तिपूर्ण उपायों के क्षेत्र में रहते हुए जो कार्यवाही की जा सकती है, हम बराबर उसे अपने ध्यान में रख रहे हैं । कुछ दिन पहले हम ने लिज़बन में अपना दूतावास बन्द कर दिया और अपने प्रतिनिधि को वहां से बुला लिया । यह तो एक संकेत मात्र था । परन्तु यह बड़ा महत्वपूर्ण संकेत था और इस से पता चलता है कि हम धीरे धीरे किस दिशा में जा रहे हैं । इस में सन्देह नहीं कि उस पग के बाद हमें और भी पग उठाने पड़ेंगे । मुझे इस सदन के सामने इन विदेशी बस्तियों के सम्बन्ध में दलीलें बताने की आवश्यकता नहीं है । परन्तु उन लोगों के लिए जो शायद मेरे शब्दों को पढ़ें या सुनें, मैं यह कहना चाहता हूं कि भारत तथा अन्य स्थानों में जो परिवर्तन हुए हैं, उन के बाद कोई देश किसी दूसरे देश पर अपना अधिकार बनाए रखने या भारत में अपना क्षेत्र रखने की बात सोचता है, तो मेरे लिए यह बड़ी हैरानी की बात है । जहां तक हमारा सम्बन्ध है, हम दुनियां के किसी भी भाग में औपनिवेशिक राज के विरुद्ध हैं । यह ठीक है कि हम अपनी—चाहें तो उसे कमजोरी कह लीजिए—कमज़ोरी के कारण इस सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कर पाते । और क्योंकि हम बहुत कुछ कर नहीं पाते, हम बहुत कुछ कहते भी नहीं हैं क्योंकि कहने के साथ ही साथ कुछ किया न जाय तो उस का कोई लाभ नहीं होता ।

हम औपनिवेशिक राज के प्रत्येक रूप के विरोधी हैं । हम यह भी समझते हैं कि किसी उलझी हुई स्थिति में किसी नारे को कार्यान्वित करने की चेष्टा कर के ही किसी समस्या को हल करना आसान नहीं होता । इस में समय लग सकता है । हम यह भी समझते हैं कि

पुराने साम्राज्यवाद के दिन तो बीत चुके। एशिया तथा अफ़्रीका के कुछ स्थानों में वह अब भी हैं और उस से बड़ी खराबी उत्पन्न होती है। पुराना साम्राज्यवाद तो अब इतिहास का अंग है, सम्भव है कि वर्तमान काल में वह कुछ समय तक चालू रहे। यह बड़ी असाधारण बात है कि पुराने निहित स्वार्थ अन्त तक अपने स्वार्थों से चिपटे रहते हैं। जब हम प्रत्येक प्रकार के उपनिवेशवाद के विरुद्ध हैं, तो भारत को भूमि पर ऐसी किसी बात का विरोध हमें कितना अधिक करना चाहिए? यदि हम अफ़्रीका या एशिया के किसी भाग में उपनिवेशवाद के विरुद्ध हैं तो भारत में ऐसी किसी बात पर तो हमारी आपत्ति बहुत ही अधिक होगी। इसलिए एक सरकार और एक राष्ट्र के रूप में हमारे लिए भारत की भूमि पर किसी विदेशी बस्ती को सहन करना असम्भव है। परन्तु मेरा विचार है—मैं नम्रता के साथ ही ऐसा कहता हूं—कि हम ने इन मामलों को तै करने के लिए झगड़े नहीं किए हैं और इस प्रकार बुद्धिमत्ता दिखाई है, क्योंकि हम ऐसा न करते तो और अधिक कठिन समस्याएं उत्पन्न हो जातीं। मैं इन प्रश्नों के सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं कहूंगा।

लंका के सम्बन्ध में मैं इतना ही कहूंगा और सदन को मालूम ही है कि मैं ने लंका के प्रधान मंत्री के साथ बातचीत—मित्रतापूर्ण बातचीत—की है। उस बातचीत में हम ने एक दूसरे की कठिनाइयां समझने का यत्न किया है। और मैं इस सदन के सामने यह कहने को तैयार हूं कि मैं ने उन कठिनाइयों को समझा है जो लंका के प्रधान मंत्री के सामने हैं। ऐसी बात नहीं कि उन के सामने कठिनाई कोई नहीं और वे ज़िद ही कर रहे हैं। और सब की तरह उन्हें तथा उन की सरकार को भी कठिनाइयों का सामना है परन्तु कठिनाइयों को उचित हल के रास्ते में बाधा नहीं डालने देना चाहिए। यह तो दूसरी बात है। लंका के प्रधान मंत्री तथा वहां की सरकार की कठिनाइयों को समझने में मैं किसी हद तक उन के साथ सहमत हुआ और कुछ ऐसे सुझाव मैं ने रखे जो सामान्यतः मैं स्वीकार न करता। परन्तु हमारी नीति का मूल सिद्धान्त यह रहा है कि हम अपने पड़ोसी देशों के साथ मित्रता तथा सहयोग की भावना से काम लें। लंका हमारा पड़ोसी है, हमारे साथ बहुत कुछ मिलता जुलता है और मेरे लिए लंका तथा भारत के इस महान देश के बीच किसी झगड़े का विचार तक करना दुःख की बात है। इसलिए हम ने लंका से एक मित्र के नाते बातचीत की और हम ने यह स्पष्ट कर दिया कि हम कहां तक झुक सकते हैं और किससे आगे झुकना, लाखों लोगों के हितों की बलि दिए बिना और उन्हें बेघर बेदेश बनाए बिना सम्भव नहीं है। इस बात को याद रखिए कि समस्या उन लोगों की है जो अब भारत के नागरिक नहीं रहे और जिन्हें यदि लंका में न खपाया गया या जिन्हें लंका के नागरिक न बनाया गया तो वे बे घर हो जायेंगे और वे किसी देश को अपना देश नहीं कह सकेंगे। मैं आशा करता हूं कि लंका में भारतीय उद्भव के व्यक्तियों के प्रश्न पर दोनों देशों की सरकारों तथा प्रधान मंत्रियों के बीच उसी मैत्री की भावना से विचार किया जायगा और हम कोई ऐसा हल ढूंढने में सफल होंगे जिस में दोनों देशों का लाभ होगा। प्रश्न यह नहीं है कि लंका यह सोचता है कि उस के उत्तर में स्थित एक बड़ा देश—भारत

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

उस पर कोई दबाव डाल रहा है । मैं इस रूप में यह नहीं कहना चाहता । और इसीलिए मैं नहीं चाहता कि यहां कोई लंका में इस समस्या के सम्बन्ध में धमकी भरे शब्दों का प्रयोग करे । यह तो निश्चित है कि हमें अपनी नीति स्पष्ट रूप से बता देनी चाहिये और उस पर दृढ़ रहना चाहिये परन्तु हमें सदा अपनी नीति मैत्रीपूर्ण ढंग से बतानी चाहिये जिससे कि दूसरी ओर कोई डर या शंका उत्पन्न न हो ।

दक्षिणी अफ़्रीका के सम्बन्ध में तो मैं यह कहूंगा कि यह समस्या जड़वत हो गई है जिस में सुधार तो बिलकुल नहीं होता, हां, बराबर बिगड़ती अवश्य जा रही है । निस्संदेह यह प्रश्न उस सीमित क्षेत्र में से निकल चुका है जहां यह था और जहां हम ने पहले पहल उठाया था । दक्षिणी अफ़्रीका में यह प्रश्न बहुत व्यापक रूप धारण कर चुका है । अब यह भारत से गए हुए लोगों और गोरों की समस्या नहीं रही बल्कि दक्षिणी अफ़्रीका के अधिकतर लोगों की अर्थात स्वयं अफ़्रीकनों की समस्या बन गई है और यह जातीय भेदभाव की प्रमुख समस्या है । यह जातिभेद संसार में बहुत से स्थानों में है; विशेषकर अफ़्रीका में और उससे भी अधिक दक्षिणी अफ़्रीका में । अन्य स्थानों में ऐसा होता है तो लोग इस के लिये तरह तरह के बहाने बनाते हैं परन्तु दक्षिणी अफ़्रीका में तो ऐसा नहीं है । वहां खुले आम इसकी घोषणा की जाती है और इसके लिये कोई बहाना नहीं बताया जाता । सच तो यह है कि दक्षिणी अफ़्रीका में यह समस्या मुख्य समस्याओं में से है, संसार के सामने यह मुख्य परीक्षा है । इस में तो बिलकुल कोई सन्देह नहीं है कि यदि जातिभेद की नीति,—एक जाति का दूसरी जातियों पर प्रभुत्व, योरुप से आकर बस्तियां बनाने वालों की, एशिया या अफ़्रीका के लोगों पर सदा के लिये प्रभुत्व जमाये रहने की चेष्टा—को उचित ठहराने का प्रयत्न किया जाता है तो संसार में—मेरे या आप के विचार में ही नहीं—ऐसी शक्तियां हैं जो अन्त तक इसका विरोध करेंगी । वे दिन गए जबकि सिद्धान्त रूप में या व्यवहार में ऐसी बातों को सहन किया जाता था । इसलिये दक्षिणी अफ़्रीका की यह समस्या, चाहे ऊपर से यह आज दबी हुई दिखाई देती है, संसार की एक मूल समस्याओं में से है जो शायद किसी दिन दुनियां को हिला देगी । हम ने इस जातिभेद तथा उपनिवेशवाद के दूसरे रूप, दूसरे पहलू अफ़्रीका के दूसरे भागों में देखें हैं । हमारे ऊपर—मेरा मतलब है, भारत पर—यह आरोप लगाया गया है कि उस ने अफ़्रीका में दूसरे देशों के मामलों में हस्तक्षेप किया है । हम पर ऐसी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति रखने का आरोप भी लगाया गया है जिस से हम अफ़्रीका में फैल कर उस सुहावनी भूमि पर अधिकार कर लेंगे जो आज योरुप वालों के हाथ में हैं । सच तो यह है कि इस सदन को मालूम है कि हम सदा ही एक अनोखी बात पर जोर देते रहे हैं—मेरे विचार में वह अनोखी इसलिये है कि मैं नहीं जानता कि किसी अन्य देश ने नीति के उस पहलू पर जोर दिया हो । मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि हम भले हैं और दूसरे देश नहीं है । परन्तु हम ने अफ़्रीका पूर्वी अफ़्रीका या अफ़्रीका के अन्य भागों में अपने लोगों को यह बताने में आवश्यकता से अधिक मुस्तैदी दिखाई

है कि यदि वे अफ़्रीका में ऐसे विशेष अधिकार चाहते हों जो अफ़्रीका की जनता के हित में नहीं, तो वे हमसे किसी सहायता या सुरक्षण की आशा नहीं रख सकते। हम उन्हें सहायता देंगे। हम ने उन्हें कहा है—"यह स्वाभाविक ही है कि हमें आपकी, आपकी प्रतिष्ठा तथा हितों की रक्षा करने में दिलचस्पी है परन्तु उस स्थिति में नहीं जब कि आप किसी प्रकार भी अफ़्रीका के लोगों के विरुद्ध हों, क्योंकि आप उनके अतिथि हैं और यदि वे आप को नहीं चाहते तो आप को अपना बोरिया बिस्तर बांधकर आना पड़ेगा और हम आप को नहीं रोकेंगे।"

यह बड़ी स्पष्ट बात है जो कि कई बार—स्वाभाविक ही है—पूर्वी अफ़्रीका में हमारे लोगों ने पसन्द नहीं की। उन में बहुत से व्यापारी लोग हैं जो रुपय कमा चुके हैं परन्तु यह हमारी दृढ़ नीति है और मैं चाहता हूं कि बाहर रहने वाले भारतीय और अन्य लोग भी इस बात को समझें। जब हमारी दृढ़ नीति यह है तो हम उस समय चुप नहीं बैठ सकते जब कि अफ़्रीका के विभिन्न भागों में ऐसी बातें होती हैं जिनका प्रभाव न केवल भारतीयों पर पड़ता है बल्कि जिनसे विश्व में खतरनाक स्थितियां उत्पन्न होने का भय रहता है। आज अफ़्रीका में हमें जातिभेद तथा एक जाति का दूसरी जाति पर प्रभुत्व पड़े भयावह रूप में दिखाई देता है और साथ ही पुराना साम्राज्यवाद भी वहां चल रहा है। हाल ही में उत्तरी अफ़्रीका में कुछ ऐसी घटनाएं हुईं जो १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ करती थीं। यह बड़ी हैरानी की बात है कि बीसवीं शताब्दी के मध्य में भी ऐसी बातें होती रहें। सम्भव है कि थोड़ी देर के लिए यह नीति सफल हो परन्तु मुझे इस में संदेह है कि यह सफलता ला सकती है। सच तो यह है कि लोग चाहे कहीं हों उन्हें डरा धमका कर काबू में कर लेना लगभग असम्भव है। हम ने देखा है कि पश्चिमी ऐशिया में एक बड़े प्रख्यात परन्तु वित्त या सैनिक दृष्टिकोण से बहुत ही निर्बल देश को, जिसे पिछले कुछ दिनों में बहुत कुछ देखना पड़ा है, कई बड़े देश भी अपने कहे अनुसार चलने पर विवश नहीं कर सके हैं। मैं इन बातों के गुणदोषों की बात नहीं करता। मेरा कहना तो यह है कि एक देश द्वारा दूसरे देश पर दबाव के इस तरीके का प्रयोग लगभग असम्भव हो चुका है। इस में सन्देह नहीं कि इस के भी कई ढंग हैं। केवल सैनिक दबाव ही नहीं, इनाम देने के वचन दिए जा सकते हैं, सहायता आदि की बातें की जा सकती हैं। परन्तु आज जो परिस्थितियां हैं उन्होंने शक्तिशाली देशों के लिये भी यह और कठिन बना दिया है कि वे अपनी इच्छा निर्बल राष्ट्रों पर ढूंस सकें। किसी हद तक वे ऐसा कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में एक शक्तिशाली देश के लिए दूसरे शक्तिशाली देश पर अपनी इच्छा ढूंसने का प्रयत्न करना कितना कठिन या असम्भव है? स्पष्ट है कि आजकल ऐसा सम्भव नहीं है। यदि कोई देश ऐसा करेगा या दोनों एक दूसरे के विरुद्ध ऐसा प्रयत्न करेंगे कि इस का फल यही हो सकता है कि झगड़ा हो—और अंत में युद्ध। इसीलिए आज संसार में यह स्थिति हमारे सामने आती है कि बड़े देश क्रोध, डर और घृणा से एक दूसरे को

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

देखते हैं और इस से वह स्थिति बनी रहती है जिसे "ठंडी लड़ाई" कहा जाता है और जिस से भविष्य में सचमुच की लड़ाई की बात सोची जाती है। आज संसार में हम सब के सामने यह समस्या है कि क्या महायुद्ध अनिवार्य है और इसलिए हमें इस के लिए तैयार रहना चाहिये और समय आने पर इस में सम्मिलित होना चाहिए या कि इसे रोका जा सकता है। यह बहुत बड़ी समस्या है। कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकता, परन्तु मुझे इस में कोई सन्देह नहीं कि संसार में बहुत से लोग—सच तो यह है कि संसार में लगभग सभी, सभी देशों में—शान्ति चाहते हैं। और फिर भी मुझे यह मानना पड़ेगा कि हाल ही में जो घटनाएं घटी हैं उन से मुझे इस बात में कुछ और सन्देह होने लगा है कि निकट भविष्य में कोई स्थायी समझौते हो सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि वे होंगे ही नहीं। मेरा विचार है कि ऐसा होने की आशा है और हमें इस के लिए काम करना चाहिए। परन्तु जब हम देखते हैं कि लोग और राजनीतिज्ञ किस प्रकार सोच रहे हैं और किस मानसिक दशा में हैं, जैसा कि मैं ने कहा कि पुराने धार्मिक जोश जैसी किसी भावना से प्रेरित हैं परन्तु धर्म का गुण उस में नहीं है, तो जो भी हो जाय वह थोड़ा है।

हम ने इस सम्बन्ध में दलीलबाजी के बारे में बहुत कुछ पढ़ा या सुना है कि मेज़ गोल हो, चौरस हो या अण्डे की गोलाई जैसी। परन्तु वास्तविक प्रश्न तो यह है कि लोगों के मन कैसे हैं और उन में क्या है। इस बात से तो कोई अन्तर नहीं पड़ता कि आप कैसी मेज़ के आस पास बैठते हैं या कि आप मेज़ का प्रयोग ही नहीं करते बल्कि पुराने भारतीय ढंग से तख्त पर या भूमि पर ही चौकड़ी मार कर बैठ जाते हैं। सवाल यह है कि उन समस्याओं को कैसे हल किया जाय और यदि आप युद्ध की भावना से उन्हें हल करने की चेष्टा करेंगे तो परिणाम भिन्न होंगे ही।

सदन को मालूम है कि कुछ समय पहले संयुक्त राष्ट्र की राजनीतिक समिति के सामने बार बार भारत का नाम आया और यह प्रस्ताव किया गया था कि भारत को उस राजनीतिक सम्मेलन का सदस्य बनाया जाय जो कि कोरिया में अस्थायी सन्धि के फलस्वरूप होना है। भारत की ऐसी स्थिति हो गई कि वह दुविधा में पड़ गया। हम ने अपना नाम पेश नहीं किया और मैं बड़ी इमानदारी और सच्चे दिल से यह कह रहा हूं—हम कोई और बोझ चाहते भी नहीं थे। साथ ही, हमारा यह दृढ़ विचार था—और स्वभाविक ही है—कि यह राजनीतिक सम्मेलन सफल रहे और एशिया व दूरपूर्व में शान्तिपूर्ण समझौता हो जाय और यदि हम उस में कोई सहायता दे सकते हों तो चाहे उस में हमारे ऊपर बोझ ही पड़ता हो, हमें वह सहायता करने से कतराना नहीं चाहिए। इसलिए इस स्थिति में हम ने अपना नाम पेश नहीं किया। परन्तु अन्य देशों ने यह सोच कर कि भारत के उस सम्मेलन में होने से सहायता मिलेगी, हमारा नाम पेश कर दिया। अन्त तक हम यही स्पष्ट करते रहे कि हम तभी काम कर सकते हैं जब कि इस झगड़े के दोनों मुख्य पक्ष यह चाहते हों। हम यह नहीं चाहते थे कि

कोई एक पक्ष दूसरे की इच्छा के विरुद्ध हम उस में धकेल दे और जब मैं कहता हूं "दो मुख्य पक्ष" तो मेरा संकेत किसी विशेष देश की ओर नहीं चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो बल्कि दो मुख्य पक्ष हैं संयुक्त राष्ट्र कमान और चीनी तथा उत्तर कोरियाई कमान। यही दो पक्ष थे जिन्हों ने अस्थायी सन्धि की और अस्थायी सन्धि के फलस्वरूप जो राजनीतिक सम्मेलन होगा उस का सम्बन्ध अन्ततोगत्वा इन्हीं दो पक्षों से होगा। मैं यह दोहरा इस लिए रहा हूं कि हम ने संयुक्त राष्ट्र संघ में इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा था उसके बारे में कुछ भ्रम था। जैसा कि सदन को मालूम है वहां इस प्रश्न पर मत लिए गए। बहुमत भारत के पक्ष में था, एक भारी अल्पमत विरुद्ध था और कई देशों ने मत ही नहीं दिए। परन्तु दो तिहाई बहुमत नहीं आया जो कि इस प्रश्न के परिव्यक सत्र में जाने के लिए आवश्यक था। उस के बाद में हम ने हमारा नाम पेश करने वालों से कहा कि इस पर ज़ोर न दें और इस प्रकार भारत का नाम वहां नहीं रहा।

परन्तु इस मतदान के कई बड़े दिलचस्प परिणाम थे। जो मत दिए गए उन का विशलेषण कीजिए तो आप को मालूम होगा कि उन चार देशों को छोड़ कर जिन्हों ने भारत के विरुद्ध बोट दिया, २१ मत थे। उन में से १८ तो अमरीका के देशों के थे जिन में से १७ लैटिन अमरीका के देशों से। लैटिन अमरीका के देशों का मैं बहुत सम्मान करता हूं। इस सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं होना चाहिये। परन्तु यह बात स्पष्ट है कि लगभग सारा योरुप और सारे का सारा एशिया इस राजनीतिक सम्मेलन में एक बात चाहता था और कुछ देश—सभी अमरीका के देश—यह नहीं चाहते थे। उन द्वारा इसके चाहने के भी उतने ही कारण हैं, जितने कि न चाहने के। परन्तु हम जिस प्रश्न पर विचार कर रहे है एशिया की समस्या है और क्या एशिया तथा योरुप की संयुक्त इच्छा का उल्लंघन केवल इसलिए किया जायगा कि कुछ लोग जिन का इस प्रश्न से वास्तव में गहरा सम्बन्ध नहीं है, उस प्रकार चाहते हैं। यह बड़ी असाधारण स्थिति है।

एक माननीय सदस्य: परन्तु नाम क्यों वापिस लिया जाय?

श्री जवाहरलाल नेहरू: यह रुचिकर बात है क्योंकि विगत कई वर्षों में संसार में कई बड़े-बड़े परिवर्तन होने के बावजूद संसार की बहुत सी महान शक्तियों, किसी न किसी कारण, इस बात को समझ नहीं पातीं कि एशियाई देश वे चाहे कितने ही कमजोर हों, उपेक्षित होना नहीं चाहते। अवहेलित नहीं होना चाहते और निश्चय ही किसी से शासित होना नहीं चाहते। सारा एशिया बदलता जा रहा है और अभी भी बदला रहा है। यहां कई परिवर्तन हो रहें हैं, और कई क्रान्तियां हो रही हैं, भले ही आप उन्हें पसन्द करते हों या न करते हों। यदि आप इन सब बातों का निष्पक्ष निरीक्षण करेंगे तो आप को यह दिखाई देगा कि दमनचक्र के दिन बीत चुके हैं और बीते जा रहे हैं—और उन के स्थान पर कोई नई बात अस्तित्तव में आ रही है। कुछ भी हो पुरानी साम्राज्यशाही के दिन बीत चुके हैं और यदि अब भी कहीं कहीं नजर आते हैं तो वे अधिक देर तक टिकाऊ नहीं हैं। जब तक संसार के बाकी देश इस बात को समझ नहीं लेते—मेरा विश्वास है कि इस बात को बहुत हद

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

तक समझा जा रहा है—तब तक आप आज के संसार को सही ढंग से समझ नहीं सकते ।

१० म० पू०

सदन को ज्ञात है कि विगत कई दिनों से संयुक्त राष्ट्रसंघ के समक्ष एक प्रश्न यह भी है कि चीन की जनवादी सरकार को सदस्यता प्रदान की जानी चाहियें या नहीं । जब भी लोग चीन के संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्राप्त करने के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं तो इस विषय पर विचारों की एक आपाधापी सी मच जाती है चीन के प्रवेश का कोई प्रश्न ही नहीं, क्योंकि वह संयुक्त राष्ट्रसंघ के अग्रणी सदस्यों में से एक है । प्रश्न केवल यह उठता है कि चीन का प्रतिनिधित्व कौन करेगा । क्या कोई व्यक्ति इस प्रकार कह सकता है कि फारमोसा टापू की वर्तमान सरकार चीन का प्रतिनिधित्व करती है ? क्या तथ्य के रूप में इस प्रकार की कोई बात हो सकती है कि फारमोसा सरकार द्वारा दी गई किसी लिखित को चीन में मान्यता दी जाती हो कतई नहीं । वे चीन का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते । वे वहां काम नहीं कर सकते, वे चीन की ओर से संयुक्त राष्ट्रसंघ में किसी भी प्रकार का आश्वासन नहीं दे सकते अतःएव चीन के संयुक्त राष्ट्रसंघ अथवा सुरक्षा परिषद में प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में यह कहना कतई झूट और बनावटी होगा कि कोई ऐसा देश वहां का प्रतिनिधित्व करें जो चीन में कुछ भी नहीं कर सकता है, वहां कोई परिवर्तन नहीं ला सकता और जो केवल चीन की ओर से अस्वीकृति प्रकट कर सकता है । तो संयुक्त राष्ट्रसंघ की राजनीति के विरुद्ध जो आरोप लगाये गये हैं, उन में से यह भी एक बुनियादी बात है ।

डा० एन० बी० खरे (ग्वालियर): क्या संयुक्त राष्ट्रसंघ भी मिथ्या है ?

श्री जवाहरलाल नेहरू: मुझे मालूम नहीं। कि सच क्या है और मिथ्या क्या है, किन्तु इतना कह सकता हूं कि माननीय सदस्य की चपल बुद्धि नितान्त सत्य है ।

किस प्रकार यह या इस जैसे प्रश्नों पर विचार किया जा सकता है ? मैं बतला भी चुका हूं इस मामले में पसन्द और न पसन्द का कोई भी बात नहीं है किन्तु कई बुनियादी सचाइयों पर चलने की बात है और यदि आप चाहें तो उनको बदलने का प्रयत्न भी किया जा सकता है । अभी उस रोज—मेरा विचार है कि कल ही ऐसा हुआ—मैं ने पत्रों में देखा कि कई महान शक्तियों ने यह सहमति प्रकट की है कि इस सत्र में अथवा इस वर्ष चीन को सम्मिलित किये जाने के प्रश्न पर विचार नहीं होना चाहिये—हां ऐसी ही कोई बात कही गई है । तो ऐसी परिस्थिति में मुझे इस बात से कोई भी आपत्ति नहीं कि मैं इस तरह काम चलाऊं जिससे कोई भी संघर्ष या झगड़ा नहीं होता हो । हो सकता है कि उस में थोड़ा सा समय लगता हो। किन्तु मैं देख रहा हूं कि लोग एक गलत रास्ते पर ही चलना चाहते हैं और ऐसे क्रम को सदा के लिए चलाना चाहते हैं और इस तरह सारे का सारा ढांचा किसी कृत्रिम नींव पर खड़ा किया जाता है और ऐसी परिस्थिति में यदि बाद में कोई गलती हो जाती है तो शिकायत की जाती है मुझ पर ऐसी घटनाओं से यही बात सिद्ध हो जाती है कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र, राजनैतिक दृष्टिकोण से, तो तर्क और बुद्धि को छोड़ते चले जा रहे हैं, और इसीलिये मैं यह कह चुका हूं कि हम धर्म के धर्मान्धताच्छादित क्षेत्र में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में धर्म से काम लेना बहुत ही

भयावह है जहां तक नैतिकता और नीति का सम्बन्ध है, धर्म का प्रवेश ठीक है, किन्तु यदि यही धर्म राजनीति में प्रवेश कर पाये तो इस से नीति पर कुप्रभाव पड़ता है, और यह धर्म धर्म न रह कर धर्मान्धता बन जाता है ।

श्री नन्द लाल शर्मा (सीकर): धर्म का इस भाषण के साथ क्या सम्बन्ध है ?

डा० एन० बी० खरे : धर्म भी माननीय सदस्य के लिये एक हौवा है ।

श्री जवाहरलाल नेहरू : यही कारण है कि हमने एक और संदर्भ में इस बात की ओर संकेत करने का साहस किया है कि धर्म को राजनीति के साथ मिलाना, और इस देश में उसे संप्रदायवाद का नाम देना कितना भयावह है । अस्तु, आजकल संसार में यह विशेष स्थिति है कि कोई बड़ा देश किसी अन्य देश को किसी चीज़ पर मज़बूर नहीं कर सकता । निश्चय ही कोई देश ऐसा नहीं कर सकता । प्रत्येक देश इतना बड़ा है कि और कोई देश उसे मज़बूर नहीं कर सकता । तो, आखिर इसका क्या उपचार है ? हां, निस्संदेह युद्ध का एक रास्ता हो सकता है जब एक देश किसी दूसरे देश को मज़बूर कर लेता है और ढकेलता है । और दूसरा रास्ता भी है जब कि मज़बूर करने की बात को छोड़ दिया जाय, तथ्यों को—वे जिस रूप में हों—मान लिया जाय, और, यदि आप चाहें तो, आपस में इस प्रकार का एक अस्थाई—यदि स्थाई न हो सके तो, समझौता कर लिया जाय कि स्वयं जीवित रहो और दूसरों को भी जीने दो । यह रास्ता संभव हो सकता है, क्योंकि अन्य उपाय से यही अभिप्रेत होगा कि बहुत बड़े पैमाने पर झगड़ा हो, और सदन यह भली भांति समझ सकता है कि अणु बम और हाइड्रोजन बम के इस युग में उस झगड़े का अन्त क्या होगा ।

और अब यह मामले जल्दी ही संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष आ रहे हैं और मैं समझता हूं कि चीन की जनवादी सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्तावों के उत्तर में कई विरोधी प्रस्ताव प्रस्तुत किये हैं । सर्वप्रथम इस बात का स्मरण किया जाना चाहिये कि सभी दलों ने इस तथ्य से सहमति प्रकट की थी कि अस्थाई संधि कराने तथा समस्याओं का निपटारा करान के लिये कोरिया में ही एक राजनैतिक सम्मेलन आयोजित किया जाय । उन्होंने उस सम्मेलन के कार्य से भी सहमति प्रकट की । अब तो केवल इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा है अथवा विवाद चल रहा है कि उस सम्मेलन की योजना क्या होगी । यह भी स्मरण किया जाना चाहिये कि उस प्रकार का सम्मेलन बहुमत के आधार पर नहीं चला करता । यह वैसे निश्चय नहीं हो पाता—कतई नहीं । यह न्यूनाधिक रूप में—यदि एक स्वर से नहीं—सम्मति के सार से तथा संबद्ध बहुसंख्यक दलों की सहमति से ही निश्चित किया जाता है । अतः इस बात का अधिक महत्त्व नहीं कि उस पक्ष में अधिक व्यक्ति हैं अथवा इस पक्ष में, सिवाय इस चीज़ के कि जितने भी अधिक देश कोई मत दें, उतना ही अधिक संख्या वाला वह दल अभिप्राय सिद्ध करने में कोई कठिनाई प्रस्तुत करे : अन्यथा इस में कोई विशेष कठिनाई नहीं है ।

वस्तुतः जो प्रश्न प्रस्तुत होता है वह यह है कि क्या इस सम्मेलन में तटस्थ देशों का प्रतिनिधित्व होना चाहिये या नहीं । हमारा यह दृष्टिकोण रहा है कि यदि इस प्रकार के देशों का प्रतिनिधित्व होगा तो

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

उस से सहायता मिलेगी, क्योंकि सीधी सी एक बात है कि वैसे देश मतभेदों को कम कराने तथा तनाव की स्थिति का शमन कराने में सहायक सिद्ध होंगे। वास्तविक करार, स्वभावतः, अन्य देशों के बीच कराना पड़ेगा। तटस्थ देश करार नहीं करा सकते, वे केवल ऐसा वातावरण पैदा कर सकते हैं जिससे अन्य देश किसी बात पर सहमत हों। अस्तु, यह एक ऐसा मामला है जो संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा अन्य पार्टी द्वारा तय होगा और इस सम्मेलन में भाग लेने की हमें कतई इच्छा नहीं। कोरिया में, जैसी इस समय यहां की स्थिति है, हमने अपने ऊपर बड़ा भारी बोझ लाद रखा है। हम तटस्थ राष्ट्र स्वदेश वापसी आयोग में हैं और हमने वहां अपनी सेना भी भेज दी है, और अभी उन्होंने काम शुरू ही किया है। किन्तु हमें जो भी सूचना प्राप्त हुई है उस से यही पता चलता है कि हमारी सेना को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इन के लिये इस काम को निपटाना इतना सुकर नहीं—कठिनाइयों की बात नहीं, यदि मैं ऐसा कह सकूं—और वह भी दक्षिण कोरियाई लोगों की ओर से: हमारे लोग शायद ही उनके सम्पर्क में आते होंगे—किन्तु इस काम के निपटाने में अन्य कठिनाइयां हैं। किसी तरह इन बन्धियों की भावनाओं को इतना उकसाया गया है कि अब उनको समझाना इतना आसान नहीं है। और अब माननीय सदस्यों ने प्रेस की रिपोर्टों से यह भी देख लिया होगा कि आज तक वहां हमारे पदाधिकारियों ने जिस ढंग से वापसी के प्रश्न को उठाया और सुलझाया है, वह प्रत्येक देश की दृष्टि में प्रशंसनीय है.... (**माननीय सदस्य:** साधु, साधु) ... मैं चाहता हूं कि उक्त आयोग में काम करने वाले हमारे यहां के प्रतिनिधि और सशस्त्र सेनाओं के पदाधिकारी तथा सैनिक इस बात का अनुभव करें कि इस सदन और देश की सक्रिय सहानुभूति तथा सद्भावना उन लोगों के साथ है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष जो भी मामले हैं, मैं उन पर अधिक विस्तार से चर्चा नहीं करना चाहता क्योंकि उससे हमारे यहां के प्रतिनिधियों को हमें या अन्य देशों को आश्चर्य सा होगा और वे कुछ परेशान होंगे। ये सभी कठिन प्रश्न हैं। निराशा भरे उन्माद में कई माननीय सदस्य हमें यह सुझाव देते हैं कि हमें संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता से हट जाना चाहिये। मैं पूरे सम्मान से यह कहना चाहता हूं कि ऐसी बात असामयिकता और अवयस्कता सिद्ध करती है। इस से यही सिद्ध होता है कि हम वास्तव में समस्या को नहीं समझ सके हैं। कोई भी राष्ट्र इस तरह समस्या को छोड़ कर भाग नहीं सकता। बावजूद सभी त्रुटियों और असफलताओं के—जो बहुत हैं—संयुक्त राष्ट्रसंघ फिर भी विश्व की एक विराट संस्था है। (**कई माननीय सदस्य:** साधु, साधु): इस संस्था में आशा और शान्ति के बीजों का संस्कार हो चुका है, और यह बहुत ही आभागी और उल्टी बात होगी कि कोई देश इस संस्था को इस लिये बरबाद करें क्योंकि यह उसकी मनपसन्द संस्था नहीं है। और इसके अतिरिक्त भी यदि कोई देश ऐसी बात करे भी तो मुझे इस बात के कहने में कोई भी संदेह नहीं कि स्वयं वह देश संस्था की अपेक्षा घाटे में रहेगा। अतः संकीर्णतम दृष्टिकोण से इस प्रकार की बात सोचना ठीक नहीं है। हम संसार से अलग थलग नहीं रह सकते, और हम एक सीमित क्षेत्र में इस तरह का एक अलग-थलग जीवन

नहीं बिता सकते । सदन मुझे यह बात कहने पर क्षमा करेगा कि भारत में हम में से बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं जो, मानसिक रूप से, सामाजिक स्वभावों से, खाने-पीने तथा विवाह आदि रीतियों में साधारणतः सब से अलग-थलग रहते हैं । हम कभी इस जाति और कभी उस जाति की आड़ लेकर जातीयता के चक्कर में खोकर अलग हो जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप भारत में ऐसी विचित्र आदत पड़ी हुई है जो संसार में और किसी भी जगह नहीं पाई जाती । हम अलग-अलग जातियों में रहकर खण्डित हो जाते हैं—और शायद इसीलिये, स्वभावतः हम देश के सम्बन्ध में भी एक अलग-थलग नीति अपनाना चाहते हैं। किन्तु सच यह है कि इस प्रकार की अलग-थलग रहने की नीति ने हमें भूतकाल में सदा ही बहुत कमज़ोर कर दिया और इतना पिछड़ा दिया कि अन्य देश विज्ञान आदि शास्त्रों में आगे बढ़ चले और हम पीछे रह गये । अतः, प्रथक् रहने की विचार-धारा, बहुत ही भयावह चीज़ है, और अब हमें शेष संसार के साथ सम्पर्क में रहना पड़ता है—और इसमें भी हम अपना तरीका चला सकते हैं और इस तरह दूसरों से बहुत कुछ बातें सीख सकते हैं । किन्तु हमें अलग नहीं किया जा सकता : सच तो यह कि कोई भी देश अलग नहीं किया जा सकता। इसलिये संयुक्त राष्ट्रसंघ से निकल जाने, अथवा अन्य समस्याओं का मुकाबला न करके भगोड़ेपने की बात करने का यही अभिप्राय है कि हम स्थिति की वास्तविकताओं से दूर भाग रहे हैं।

अपने इस वक्तव्य को समाप्त करने से पहले, मैं काश्मीर समस्या पर कुछ शब्द बताना चाहता हूं। मैं सदन को पहले भी ——मेरा विचार है, दो बार——बता चुका हूं कि विगत पांच या छः सप्ताहों में काश्मीर में क्या कुछ हुआ । वहां इस प्रकार की जो भी घटनायें हुई वह हवा से नहीं फैलीं या किसी गुप्त षड्यंत्र से नहीं हुईं । जो व्यक्ति काश्मीर की घटनाओं का पर्यालोचन कर रहे थे उन्होंने यह देख लिया कि वहां जो संकट स्थिति प्रस्तुत हुई वह पिछले कई महीनों से पनप रही थी, और वह संकट स्थिति भारत के सम्मुखवर्ती नहीं थी——यद्यपि हम उस पहलू को भी ले सकते हैं——किन्तु यह वहां की आन्तरिक संक्रान्ति थी जिससे सभी अन्य सम्बन्धित बातों और समस्याओं पर प्रभाव पड़ा था । मई में यूरोप की यात्रा करने से पहले मैं वहां थोड़े समय के लिये गया था । मैं सदा वहां के घटनाचक्र के सम्पर्क में रहता था । मैं वहां मई के अन्तिम दिनों में गया, और वहां जो कुछ भी हो रहा था, उसे देखकर मुझे आश्चर्य हुआ——आर्थिक, राजनीतिक तथा अन्य घरेलू मामलों की जो भी स्थिति थी उसे देख कर मैं आश्चर्य में पड़ा । विगत दो वर्षों में काश्मीर में जो भी भूमि-सुधार हुये हैं, उनकी प्रशंसा हम सभी ने की है, और वे सुधार वास्तव में बहुत अच्छे थे । मैं अभी भी उन भू-सुधारों का प्रशंसक हूं ।

किन्तु, दुर्भाग्यवश, जब कि वे सुधार अच्छे थे, उन को कार्यान्वित करने का ढंग अच्छा नहीं था । दो तरीकों से यह ढंग अच्छा नहीं था : पहला यह कि अन्य परिणामों पर ध्यान नहीं दिया गया था; और दूसरे यह कि उन के वास्तविक कार्यान्विकरण में——जैसा कि बाद की रिपोर्टों से पता चलता है, बहुत ही अन्याय किया जा चुका था——वह ढंग न्याय्य नहीं था । मैं केवल इस बात को सिद्ध करने के लिये इस प्रकार का निर्देश करता हूं कि इन बातों में वह चीजें भी थीं, जिन से वहां के लोगों में आर्थिक असंतोष की एक गंभीर लहर

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

दौड़ चली। इसके बहुत समय बाद वज़ीर कमेटी नियुक्त की गई, और अभी हाल में उसकी रिपोर्ट प्रकाशित की गई। इस रिपोर्ट से उस असंतोष के कई कारणों का पता चलता है, कि किस प्रकार भू-समस्या को समुचित ढंग से नहीं सुलझाया गया, और किस प्रकार किसान-वर्ग तथा अन्य लोगों में किसी समय से पनपती हुई आशाओं पर पाला पड़ा जिस से असंतोष की लहर दौड़ चली। अन्य मामले भी थे: वहां की सहकारी संस्थायें असफल हुई और कई अन्य बातें हुई।

और अब, इसके परिणामस्वरूप, चूंकि यह वहां का घरेलू मामला था, वहां की सरकार में और वहां की उस पार्टी जिससे सरकार को स्वीकृति मिलती है, नेशनल कान्फ्रेंस में भी बड़े भारी झगड़े हुए। और जब मैं मई के अन्तिम दिनों में वहां चला गया तो मुझे वहां की दशा देखकर बड़ी परेशानी हुई क्योंकि मैंने देखा कि धीरे धीरे काश्मीर सरकार का कार्य भी बन्द होने लगा। घरेलू झगड़ों और फूटों के कारण वहां की वह सरकार नहीं चल सकी। स्वाभाविक बात थी कि मैंने, मित्रता के नाते, उन्हें एक साथ चलने एक निश्चित नीति पर चलने और सरकार का कार्य चलाने का परामर्श दिया, और यह भी बताया कि दो या तीन विरुद्ध दिशाओं में चलना ठीक नहीं। यही था जो वहां उस समय हो रहा था।

एक और बात जिससे मेरे मन में बहुत हद तक अशांति पैदा हुई यह थी कि आज से एक वर्ष पहले हमने काश्मीर सरकार के साथ एक करार किया था। जिसके विषय में सदन भलीभांति जानता है इस सदन ने उसे स्वीकृत किया और काश्मीर की विधान सभा ने भी उसे स्वीकृत किया। किन्तु उसे बहुत ही कम मात्रा में कार्यान्वित किया गया और करार का बाकी भाग खत्ते में पड़ गया तो ऐसी स्थिति में मैं वहां की कई कठिनाइयों को भली भांति समझता था, जिनको यह सदन शायद अच्छी तरह से नहीं समझता हो। अतः यदि उसमें कोई देर भी हो जाती तो मैं उसकी परवाह नहीं करता बहुत हद तक यह देर जम्मू में हुई घटनाओं के कारण हुई जिनसे सहसा एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हुई और उस स्थिति से काश्मीर घाटी में भी प्रतिक्रियाएं होने लगीं।

डा० एन० बी० खरे: जम्मू के आन्दोलन से उस विचित्र स्थिति को बढ़ावा नहीं मिला बल्कि वहां की स्थिति की कलई खुल गई और सभी लोग उस की यथार्थता जान गये।

श्री जवाहरलाल नेहरू: काश्मीर घाटी में उसकी जोरदार प्रतिक्रिया हुई और जो हमारे और काश्मीर सरकार के मित्र नहीं हैं, उन्होंने वहां की उस स्थिति से खूब लाभ उठाया—यद्यपि वह अनुचित था। इससे वहां की पेचीदगियां और भी उलझ गई और करार के कार्यान्वित होने में और भी देर लग गई।

यह सभी बातें साथ साथ हुईं, और जैसा मैंने बतलाया भी, जब मैं वहां विगत मई में चला गया तो मैं बहुत ही ज्यादा परेशान हुआ। मैं यूरोप चला गया।

जब मैं यूरोप में था तो मेरे सम्मान्य सहयोगी शिक्षा मंत्री जो काश्मीर की

घटनाओं के निकट सम्पर्क में थे और मेरे दूसरे सहयोगी—राज्य-मंत्री, जो सरकारी रूप से वहां की घटनाओं के सम्पर्क में रहा करते थे, और जिन्होंने वहां की घटनाओं की बारीकियों को देखा था, काश्मीर चले गए। वहां की सरकार के निमन्त्रण पर हमारे शिक्षा मंत्री वहां गये और उन्हें बहुत से उपदेश और परामर्श दिये। इस सब के बावजूद वहां की स्थिति बिगड़ती चली गई और जब मैं वापिस आया तो ये रिपोर्टें मेरे पास आयीं। मैंने शेख अब्दुल्ला को दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया। सच तो यह है कि जिन दिनों में यूरोप में था, मैंने यहां वालों को यह संदेश भेजा था कि शेख अब्दुल्ला को निमन्त्रित किया जाय। वापसी पर मैंने उसे निमन्त्रित किया। वह नहीं आया; और बाद में उस ने यह कहला भेजा कि मैं कुछ समय बाद आऊंगा। इसके बाद भी यही निमन्त्रण टेलीफोन और चिट्ठी से दोबारा भजा गया और आखिर वह नहीं आया। इसी बीच -- सत्य तो यह है कि मेरे आने से पहले--शेख अब्दुल्ला और अन्य कई लोग इस प्रकार बोलने लगे जो मुझे बहुत ही विचित्र दिखाई दिया और जिस से मैं बहुत हद तक परेशान हुआ। मैं कुछ भी नहीं कर सकता था, हां इतना कर लेता कि शेख अब्दुल्ला से बातचीत कर लेता, और यह गिला करता कि तुम ने ऐसा क्यों किया। यह तो स्पष्ट है कि उसे इन समस्याओं—आर्थिक और कई दूसरी —जिन की ओर मैं निर्देश कर चुका हूं—परेशानी हुई थी—चूंकि यह समस्याएं उस समय उसके सामने खड़ी हो गई थीं। और उससे निकलने का कोई भी रास्ता नहीं सूझता था। हां इसमें संदेह नहीं कि उन बातों पर उपचार था, और अभी भी उपचार मौजूद है किन्तु उसने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। तो इस तरह वह एक भिन्न दिशा में चलने लगा, और उसने अनुचित ढंग से वहां की आर्थिक घटनाओं —सहायता का नहीं भेजा जाना, आदि, जो कुछ भी हो--का दोष भारत सरकार पर मढ़ा। यों तो सदा से हमारी यही नीति थी कि वहां वालों के लिए कोई भी नीति अपनाना वहां की ही सरकार पर निर्भर है। वहां की पार्टी इसका निश्चय करे, वहां की सरकार इसका निश्चय करे और एक नीति पर चले। यदि वह नीत भारत सरकार की नीति से मिलती, जैसा कि हम निस्संदेह चाहते भी और जैसा कि हम ने उस नीति के विषय में चाहा भी है और प्रयत्न भी किया है कि काश्मीर से सम्बन्धित मामलों के विषय में एक संयुक्त नीति चलाई जाय तो अच्छी बात थी। और यदि ऐसी बात नहीं थी, यानी वहां की सरकार की ऐसी नीति थी जिससे हम पूर्णतया सहमत नहीं थे तब तो यह भारत सरकार के अधिकार में था---चुनाचि मैं ने शेख अबदुल्ला और उसकी सरकार के अन्य सदस्यों से भी कहा—कि हम मिलजुलकर इस बात पर विचार करते कि यदि हम एक दूसरे का साथ छोड़ भी दें तो इस मामले को कैसे निपटाया जाय।

तथ्य तो यह था कि इन मामलों में स्वयं शेख अब्दुल्ला का अपनी सरकार में अल्पमत था, और अपने दल में वे और भी अल्पमत में थे। इसी कारण यह गड़बड़ हुई। अच्छा परामर्श देने और कुछ उद्विग्न होने के सिवाय मैं ने अनुभव किया कि मैं अधिक कुछ नहीं कर सकता था। इस प्रकार घटनाएं घटती जा रही थीं। अंत में जैसा कि सदन भली भांति

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

जानता है स्थिति में विस्फोट हुआ और परिवर्तन हुए ।

काश्मीर से राजनैतिक रुप में बीस वर्ष से सम्बन्ध होने के कारण और इन घटनाओं से सरकारी तौर पर पिछले छः और सात वर्षों में निकट सम्पर्क होने के कारण सदन यह भली भाँति जान सकता है कि उनसे मुझे कितनी पोड़ा हुई है। मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि यह कोई व्यक्तिगत मामला नहीं है। इस काश्मीर समस्या को हमने सदैव ही अपने लिए सांकेतिक रूप में लिया है जिसकी प्रतिक्रियायें भारतवर्ष में होनी हैं। काश्मीर हमारे लिए इस बात का प्रतीक था कि हमारा राज्य लौकिक है क्योंक काश्मीर भारी बहुमत और वह भी मुसलमानों के बहुमत से भारतवर्ष के साथ मिलना चाहता है इसके प्रभाव भारतवर्ष तथा पाकिस्तान दोनों पर ही पड़ेंगे क्यों कि यदि हम काश्मीर का निपटारा पुराने द्वि-राष्ट्र सिद्धांत के आधार पर कर देते हैं तो भारतवर्ष के लाखों व्यक्ति तथा पूर्वी पाकिस्तान के लाखों व्यक्तियों पर इसका काफी प्रभाव पड़ेगा। और इसकी नाना प्रकार की प्रतिक्रियाएं होंगी बहुत से वे घाव जो अब भर चुके हैं सम्भवतः फिर हरे हो जायेंगे। अतएव यह समस्या इस रूप में कभी नहीं थी और न इस रूप में कभी रही है कि कुछ राज्य क्षेत्र भारत को मिलेगा या नहीं निश्चित रूप से यह समस्या तो गहन परिणाम की रही है।

काश्मीर तो अनन्तः सौंदर्य का स्थल रहा है इससे भी बड़ी बात वह है कि काश्मीर सदैव ही से सामरिक महत्व का स्थान रहा है, और सामरिक महत्व की दृष्टि से किसी देश का होना उसका दुर्भाग्य ही है क्योंकि इसकी ओर ईर्षा भावना से पूर्ण सभी की दृष्टि लगी रहती है। जहां तक हमारा सम्वन्ध है वहां तक इसका सामरिक दृष्टि क़ोणही हमारे लिए वांछनीय है चाहे ऐसा हो किन्तु हम अपनी इच्छा इस मामले में नहीं थोप सकते। इसी कारण हमने इसे अलग कर दिया है और आरम्भ से ही यह कहते आ रहे हैं। तथा इस बात पर ज़ोर दिया है कि काश्मीरियों को ही इस प्रश्न के बारे में निश्चय करना चाहिये। हमने सदैव ही यह नीति अपनाई है तथा अपनाते रहे हैं कि उन्हीं लोगों को इस श्न का निर्णय उचित रीति से करना चाहिये न कि उस प्रकार से जिस प्रकार कि पाकिस्तान प्रेस के कुछ व्यक्ति इसे कराना चाहते हैं। पिछले कुछ वर्षों से पाकिस्तानी प्रेस के रवैये के और कभी कभी वहां के कुछ व्यक्तियों के, जो न्यूनाधिक रुप में उत्तरदायी व्यक्ति होते हैं, वक्तव्यों के तो हम आदि हो चुके हैं, परन्तु पिछले कुछ सप्ताहों में इसके सम्बन्ध में वास्तविकता मेरी बुरी से ुरी कल्पनाओं से भी कहीं आगे बढ़ गई है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि बिना किसी औचित्य के वहां इस प्रकार का पागलपन फैला हुआ है। स्वभाविक चिड़चिड़ाहट को मैं समझ सकता हूं, कठोर भाषा को ी समझ सकता हूं किन्तु इस प्रकार के पागल प्रचार से यह अनुभव होन लगता है कि यह कोई ऐसा कार्य नहीं है जो किसी सिद्धान्त या तर्क या युक्ति के आधार पर हो सके। पाकिस्तान प्रेस में काश्मीर की घटनाओं के सम्बन्ध में जो तथाकथित तथ्य दिये गये हैं वे सत्य से इतने दूर हैं कि उन्हें अतिशयोक्ति भी नहीं कह सकते। काश्मीर

में हुई मृत्युओं की संख्या जो दी गई है वह एकदम झूठी है। और जांच के आधार पर में कह सकता हूं कि ये वक्तव्य शत प्रतिशत झूठे हैं। में ऐसा इसलिए कहता हूं कि हम ने वहां अपने निजी व्यक्ति भेजे थे जिन्हें काश्मीर सरकार के प्रति कोई विशेष अभिरुचि नहीं थी।

डा० एन० बी० खरे : धन्यवाद।

श्री जवाहरलाल नेहरू : मैं चाहता हूं कि डा० खरे सदैव पाकिस्तान जैसा व्यवहार न करें।

यह ठीक है कि काश्मीर में विपत्ति आई, झगड़े हुए, प्रदर्शन किये गये, मैं उन में कोई कमी नहीं करता। बड़ी बड़ी बातें हुई तथा बड़े बड़े परिवर्तन हुए क्योंकि नेशनल कान्फ्रेंस में—जिस ने कि पिछले वर्षों में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रतिनिधित्व किया था—अचानक फूट पड़ गई। ये सभी बातें वहां हुई। इन सभी बातों को देखते हुए मैं कहूंगा। कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वहां थोड़ी सी ही गड़बड़ हुई अधिक नहीं। फिर भी इस प्रश्न को हमें अपनी समस्त धैर्य्य तथा विवेक से सोचना होगा। यह बड़ा गहन प्रश्न है; मैं फिर कहता हूं कि इस प्रश्न का निपटारा अंत में काश्मीर वालों की स्वेच्छा से ही होगा। चाहे वह काश्मीर है अथवा कोई अन्य भाग—हम उसे शस्त्रों की सहायता से नहीं लेंगे।

काश्मीर में विदेशी हस्तक्षेप के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस प्रकार के आरोप सदैव ही लगाये जाते हैं; यदि इनमें थोड़ा सा भी सत्य है तो इनको बढ़ा चढ़ा कर कहा गया है और उन के विषय में कुछ भी करना बड़ा कठिन है। इस प्रकार के मामलों में मेरे लिए यह आसान बात नहीं है कि मैं प्रत्येक तथ्य का हवाला दूं किन्तु मैं कहूंगा कि, पिछले कुछ सप्ताहों में, पिछले कुछ महीनों में तथा कुछ अधिक समय में इस प्रकार के हस्तक्षेप के मामले हमारे सामने आये हैं जहां कि व्यक्तिगत हस्तक्षेप हुआ है इन को सरकारी हस्तक्षेप कहना ठीक नहीं है। किन्तु व्यक्तियों ने वहां अच्छा बर्ताव नहीं किया है। क्योंकि इस सम्बन्ध में फिर आपको वही मूल सिद्धांत याद रखना होगा कि काश्मीर सामरिक महत्व का देश है। बहुत से देश इसमें रुचि रखते हैं तथा इस के बारे में जानकारी एंव सूचना चाहते हैं। आप कालिमपोंग जायें—यह गुप्तचरों का केन्द्र है। अन्तर्राष्ट्रीय गुप्तचर प्रत्येक देश के वहां मिलेंगे। यह बड़े आश्चर्य का विषय है। कभी कभी तो मुझे सन्देह होने लगता है कि वहां कि बहुसंख्या इन गुप्तचरों की है। कालिमपोंग से समाचार आते हैं जो कभी सच भी हो सकते हैं किन्तु आमतौर से नहीं। इसी प्रकार काश्मीर में भी व्यक्तियों का समूह तथा व्यक्तिगत रूप से व्यक्ति रुचि रख सकते हैं। व्यक्तियों ने वहां कार्य किये हैं मैं समझता हूं कि उन लोगों ने वहां सम्बन्ध स्थापित कर लिए हैं और समाचार एक दूसरे से होकर आते जाते रहते हैं, हम ने इस सम्बन्ध में काफी रोकथाम की है किन्तु इस प्रकार का कार्य वहां हो रहा है—काश्मीर अकेले में ही नहीं अपितु अन्य स्थानों में भी इस प्रकार का कार्य चल रहा है। हो सकता है कि कभी कभी ऐसा देहली जैसे नगर में भी होता हो। जब इस प्रकार के दोषारोपों के विषय में हमें यदि नाममात्र का साक्षय भी मिल जाये तो हम उन के विरुद्ध कार्य-

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

वाही करेंगे। यदि कुछ नहीं मिलता तो केवल चिल्लाने से कोई लाभ नहीं है, इस से तो हानि ही अधिक होती है।

सदन को यह भली भांति ज्ञात है कि पाकिस्तान के प्रधान मंत्री से जब कि वह यहां थे तो मैंने भेंट की और उन्होंने एक वक्तव्य भी जारी किया था जो कि दोनों की सहमति से जारी किया गया था। उन के वापिस जाने के बाद ही वहां के प्रेस ने तीव्रतर प्रचार शुरू कर दिया, कुछ तो मेरे विरुद्ध तथा कुछ हमारे देश के विरुद्ध। अब मैं कहना चाहता हूं कि पाकिस्तान के प्रधान मंत्री श्री मुहम्मद-अली तथा मैं ने इस प्रश्न पर विस्तृत रूप से तथा मैत्रीभाव से, इन सभी कठिनायों के होते हुए भी इस बात का प्रयत्न किया कि यदि हम सभी बातों को शीघ्र ही तय नहीं कर सकते तो कम से कम इस सम्बन्ध में एक पग तो उठावें। अतएव मैं वहां के प्रेस प्रचार को देख कर विस्मय में पड़ गया—जोकि पहले करांची से और बाद में लाहौर से हुआ। इस प्रचार का मुख्य विषय एडमिरल निमित्ज को वहां जनमत का प्रशासक बनाया जाय अथवा नहीं था। जब से श्री मुहम्मद अली यहां से गये, और जब हमारा वक्तव्य जारी हुआ, मैंने उस दिन से अबतक इस विषय को कहीं भी जनता के सन्मुख नहीं रखा। अपने निजी क्षेत्र में या मंत्रि-मंडल में चाहे मैंने इस का थोड़ा हवाला दे दिया हो। मैं मानता हूं कि मुझे इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ है और अन्यत्र भी इस के बारे में पत्र व्यवहार करने में मुझे कुछ कठिनाई प्रतीत हुई है क्योंकि यह स्थिति मुझे दुर्बोध दिखाई देती है। मैं यहां बैठा हूं, चुपचाप बैठा हूं और मुझे पर इस प्रकार के गम्भीर षडयंत्र का आरोप लगाया गया है। अतएव मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मुझे इसका पूर्ण विश्वास है कि श्री मुहम्मद अली ने इसे नापसंद किया होगा।

जहां तक एडमिरल निमित्ज़ का सम्बन्ध है वह बहुत ही योग्य व्यक्ति है, और यदि उनकी कोई आलोचना की जाती है तो मैं इसे घृणा की दृष्टि से देखता हूं। मैंने उन से भेंट की है। वह एक योग्य ही व्यक्ति नहीं हैं अपितु प्रशंसनीय भी है। चार वर्ष से अधिक हुए तब उन्हें जनमत प्रशासक नियुक्त किया गया था। तीन वर्ष हुए तब उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि इस सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं हो रहा और न शीघ्र ही कुछ होने वाला है। हमारा विचार है कि सभी प्रकार से यह बात समाप्त हो चुकी है। श्री मुहम्मद अली के सम्मुख मैंने एक युक्ति रखी थी कि इन तीन चार वर्षों में बहुत कुछ हो चुका है, यदि हम काश्मीर समस्या का निपटारा करना चाहते हैं तो हमें इस समस्या को बड़ी शक्तियों की राजनैतिक चर्चा से अलग रखने का प्रयत्न करना चाहिए। वे बड़ी शक्तियां चाहे व्यक्तिगत रूप से हों अथवा सामूहिक रूप में।

डा० एन० बी० खरे : तो फिर इस प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र संघ से वापिस ले लीजिये।

श्री जवाहरलाल नेहरू : इसी कारण तो मैं ने कहा था कि यह अच्छा नहीं है कि हम किसी बड़ी शक्ति से कहें कि वह हमें जनमत प्रशासक दे, चाहे वह कितना ही योग्य क्यों न हो क्योंकि इस से अवश्य भ्रान्ति उत्पन्न होगी, मेरे मन में नहीं अपितु किसी न किसी बड़ी शक्ति

के मन में अतएव मैं ने कहा था कि हम को युरोप और एशिया के किसी अन्य देश से कोई व्यक्ति चुन लेना चाहिए। यह अच्छा होगा । अतः सदन से मेरी प्रार्थना है कि हम लोग धैर्य से काम लें। हमें अपनी स्थिति पर दृढ़ रहना होगा । तथा बड़ी शक्ति और भावनाओं से बचकर हमें कार्य करना होगी इस समस्या के निपटाने का एक यही साधन है । जब कभी कोई महत्वपूर्ण बात होगी तो मैं यहां सदन में उस के बारे में परामर्श लूंगा । यह तो सदन को भली भांति विदित है कि जिस वैदेशिक नीति का हम ने भूतकाल में अनुसरण किया है उसका अनुमोदन हमारे देश भर में किया गया है अन्यथा हम इसका अनुसरण कर ही नहीं सकते थे । संसार के अन्य बहुत से देशों ने भी इसको अधिकाधिक सराहा है । और उन देशों ने भी जिन्होंने कि इसका समर्थन नहीं किया है, समय समय पर इस की प्रशंसा की है । जब ऐसी बात है तो मैं समझता हूं कि इस मूल नीति में कुछ आवश्यकतानुसार परिवर्तन और वे भी जहां जहां कि आवश्यकता हो वहां करके इसे जारी रखा जाय ।

उपाध्यक्ष महोदय : प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ :

"वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और तत्सम्बन्धी भारत सरकार की नीति पर विचार किया जाये ।"

मेरे पास बहुत से संशोधन आये हैं। मैं सदस्यों को एक एक करके बलाऊंगा। उनको कहना होगा कि क्या वे अपना संशोधन प्रस्तुत करना चाहते हैं अथवा नहीं; फिर मैं इन संशोधनों को उसी प्रकार लूंगा । प्रस्ताव तथा संशोधन दोनों पर ही चर्चा होगी । प्रत्येक सदस्य को अधिक से अधिक १५ मिनट तथा प्रत्येक दल के नेता को २० मिनट मिलेंगे ।

"**डा० लंका सुन्दरम** (विशाखापटनम) : मैं प्रस्ताव करता हूं कि प्रस्ताव के अंत में निम्न जोड़ दिया जाय :—

"उस पर विचार करने के उपरांत सदन को खेद है कि :—

(१) इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जम्मू तथा काश्मीर के प्रश्न पर भारत का तथा पाकिस्तान प्रत्यक्ष रूप से आपस में बात चीत करने के लिए तैयार हो गये हैं किन्तु जम्मू तथा काश्मीर राज्य में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रेक्षकों की हानिकारक कार्यवाही को रोकने तथा उन्हें भारतवर्ष की सीमा से बाहर निकालने के सम्बन्ध में सरकार द्वारा कोई प्रभावशाली पग नहीं उठाये गये हैं ।

(२) श्री जान फास्टर डलेस के वक्तव्य के बाद भी जिसमें कि उन्होंने कहा था कि भारत को तटस्थ वैदेशिक नीति का मल्य चुकाना होगा अर्थात उसे कोरिया के सम्बन्ध में होने वाले राजनीतिक सम्मेलन की सदस्यता से हाथ धोना पड़ेगा किन्तु फिर भी कोरिया में संरक्षण मामलों के लिए भारतीय सेनाओं को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्वेच्छा पर छोड़ दिया है ।

(३) इस देश के प्रति अमरीका के घोषित विचारों को ध्यान में रखते हुए भी सरकार ने अपने आप को संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाहियों से अलग नहीं किया ।

(४) भारतवर्ष में विदेशी बस्तियों के व्यक्तियों को इस देश में विलय कर के उनकी स्वतन्त्रता को सुरक्षित करने

लोक-सभा वाद-विवाद

[भाग २—प्रश्नोत्तर के अतिरिक्त कार्यवाही]

लोक सभा

शनिवार, १७ सितम्बर, १९५५

लोक-सभा ग्यारह बजे समवेत हुई

[**अध्यक्ष महोदय** पीठासीन हुए]

प्रश्नोत्तर

(प्रश्न नहीं पूछे गये—भाग १ प्रकाशित नहीं हुआ)

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के बारे में प्रस्ताव

प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक कार्य मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) : मैं प्रस्ताव करता हूं :

> "कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और उसके बारे में भारत सरकार की नीति पर विचार किया जाये ।"

लगभग छः मास पहिले मैं ने इस सभा में वैदेशिक मामलों पर भाषण दिया था । मेरा ख्याल है कि वह अनुदानों की मांगों के बारे में था । उस समय मैंने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की ओर ध्यान दिलाया था और कहा था कि भविष्य बहुत ही अन्धकारमय है । स्थिति बिगड़ गई थी और विश्व व्यापी युद्ध के विपत्ति का यह युद्ध कराने वाले किसी कारण के बनने का बड़ा खतरा था । और साधारणतया एक भय का वातावरण था । चारों ओर बन्दूकें भरी हुई थीं और लोग उनके चलाने को तैयार खड़े थे । यह कहने में मुझे खुशी है कि अब स्थिति में इन पिछले छः मासों में बहुत सुधार हो गया है । बन्दूकें अब भी भरी हैं परन्तु उंगलियां घोड़ों पर नहीं हैं । मैं आज के संसार का बहुत आशामय चित्र खींचना नहीं चाहता, क्योंकि इसमें अनेकों अन्धकारमय और खतरें की बातें हैं । तो भी, मैं समझता हूं कि यह कहना ठीक है कि चारों ओर वातावरण में सुधार हुआ है और पहिली बार संसार के लोगों में शान्ति की भावना, यह भावना उत्पन्न हुई है कि युद्ध अनिवार्य नहीं है या नहीं होगा बल्कि वास्तव में इससे बचा जा सकता है । मैं समझता हूं कि संसार में लोगों के मस्तिष्क में जो सब से बड़ी बात अब उठी है वह यह है यदि मैं यह कह सकूं—कि युद्ध करना निरर्थक है, तथा कि युद्ध से—कम से कम आधुनिक प्रकार के युद्ध से किसी बड़ी समस्या का हल नहीं होता और इसलिये सारी समस्याओं पर चाहे कितनी ही कठिन और जटिल हों, शान्तिपूर्वक विचार किया जाना चाहिये । उन्हें बातचीत द्वारा हल करने की कोशिश करनी चाहिये । यह कहना मामूली सी बात महसूस हो सकती है और इतने पर भी मैं समझता हूं कि यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है कि अधिक से

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

अधिक लोगों ने ऐसा ही सोचा तथा कहा है। में भारत के लोगों की बात नहीं कर रहा हूं क्योंकि हमने सदैव ही ऐसी ही बात कही है। परन्तु, कई बड़े और शक्तिशाली देश, जो अपने सैन्य बल पर अधिक विश्वास करते हैं, आज कुछ और बात कहते हैं। मेरा ख्याल है कि यह बहुत महत्वपूर्ण बात है क्योंकि हो सकता है कि इससे संसार में एक बिल्कुल नया दृष्टिकोण व्यापक हो जाये। मैं फिर एक बार यह कहना चातहा हूं कि मैं अत्यधिक आशावादी बनना नहीं चाहता क्योंकि चारो ओर खतरे के स्थान अभी हैं और अब भी अनेकों ऐसे लोग है जिनका विश्वास—शायद उन्होंने ऐसा कहा है—वर्तमान समस्याओं को युद्ध जैसे तरीक़ों से हल करने में है। परन्तु सारे देशों में लोगों की निरन्तर बढ़ती हुई संख्या शान्तिपूर्ण ढंगों की ओर देखती है और उसने उन लोगों से मुख मोड़ लिया है जो युद्ध की बात सोचते और करते हैं।

छः मास पूर्व जब मैं ने इस सभा में भाषण दिया था उसके बाद शीघ्र ही बांडुंग सम्मेलन हुआ। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि वह केवल एशिया के इतिहास में ही नहीं बल्कि संसार के मामलों में बहुत महत्वपूर्ण घटना थी। मेरा ख्याल है कि इसके फलस्वरूप अनेकों बातें हुई हैं। बांडुंग सम्मेलन में एकत्रित हुये ३० राष्ट्रों मे शान्तिपूर्ण ढंगों के पक्ष में अभिलेख बनाया जिस पर सब के हस्ताक्षर तथा स्वीकृति थी। यह अभिलेख, निश्चय ही, उपनिवेशवाद और जातिवाद के विरुद्ध था। यह विचार करते हुये कि बांडुंग में जिन राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया उनकी दृष्टि और नीतियों में महान अन्तर था, मैं समझता हूं कि वह एक बहुत उल्लेखनीय सफलता की बात थी। फिर भी बुनियादी बातों के बारे में वे एक सामान्य आधार पर आ सके। मतभेद होते हुये भी, यह शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का सामान्य आधार खोजने के लिये लोगों के प्रयास का एक महत्वपूर्ण उदारहण है।

उसके बाद, बहुत सी बातें हुईं। परन्तु लगभग उस समय उससे कुछ पहिले और कुछ बाद में, आस्ट्रिया शान्ति सन्धि हुई जिससे उन अनेकों समस्याओ में से एक विपत्तिजनक सवाल दूर हो गया है जिनका सामना योरोप का साधारणतया रहता है। रूस और यूगोस्वालिया ने एक दीर्घकालीन झगड़े को समाप्त कर दिया। निःशस्त्रीकरण के सवाल के बारे में एक नया दृष्टिकोण अपनाया गया। उस समय रूस ने चांसलर एडेनौर को आमंत्रण भेजा, जो अब कार्यान्वित हो चुका है, और अन्य अनेकों बातें हुईं। इन सब से भी बात बड़ी यह हुई कि जेनेवा में चार बड़े देशों का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन ने कोई संकल्प आदि स्वीकार नहीं किया। कोई निश्चित कार्य किये बिना भी इसने संसार के सारे मामलों में एक महान अन्तर पैदा कर दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि वहां उपस्थित चारों विख्यात प्रतिनिधियों को इसका श्रेय प्राप्त है, फिर भी मैं इस बारे में अमरीका के प्रेजिडेण्ट और रूस के प्रधान मंत्री का विशेषरूप से उल्लेख करना चाहता हूं। इन देशों के बीच जो भारी मतभेद था उसमें कुछ कमी होने पर संसार में कुछ आश्चर्य और सन्तोष का प्रदर्शन किया गया।

उसके बाद हाल ही में, दो या तीन घटनायें हुई हैं,। एक तो अणुशक्ति का शान्तिपूर्ण कार्यों में प्रयोग के विषय पर जेनेवा में सम्मेलन हुआ। उसने संसार के विचारों को इन शान्तिपूर्ण प्रयोगों की ओर

मोड़ दिया है क्योंकि जन साधारण ने अणु-शक्ति को केवल एक विध्वंसक और विपत्ति की वस्तु ही समझ रखा था। अब, यह मालूम होता है कि यह मानव की उन्नति के लिये भी प्रयोग में लाई जा सकती है और इस प्रकार संसार के सामने यह सवाल और भी स्पष्ट रूप से निर्णय के लिये उपस्थित हो गया है कि वे युद्ध और असीम विनाश की ओर जायेगा या शान्ति, और—यदि असीम नहीं तो मानव की महान—उन्नति का मार्ग अपनायेगा।

पिछले दिनों चांसलर एडेनौर मास्को गये थे और परिणामस्वरूप एक प्रकार का समझौता हुआ। समझौते से बड़ी बातें तय नहीं हुई हैं। हमें यह आशा भी नहीं करनी चाहिये कि सारी समस्यायें एकदम हल हो जायेंगी। जर्मनी की समस्या के हल में अभी बहुत विलम्ब है। मैं यह कहना नहीं चाहता कि इस का सारे सम्बन्धित पक्षों के लिये सन्तोषजनक हल कब होगा। परन्तु स्मरणीय बात यह है कि वह समस्या सम्भाव्य झगड़े की परिस्थितियों से निकल कर विचार विमर्श किये जाने की स्थिति में आ गई है। स्वयं यही एक बहुत बड़ा लाभ है। अतः, रूस और चांसलर एडेनौर के बीच यह समझौता अधिक अच्छा न होने पर भी, तनाव को कम करने और समस्याओं को शान्तिपूर्ण हल की दिशा में एक लाभप्रद पग हैं।

फिर, पिछले कुछ सप्ताहों से जेनेवा में अमरीका और जनवादी चीन सरकार में राजदूत अपेक्षतः एक साधारण मामले पर अर्थात्, अपने अपने नागरिकों को स्वदेश लौटने की अनुमति दिये जाने के विषय पर विचार विमर्श कर रहे हैं। कुछ दिनों पूर्व यह घोषित किया गया था कि इस मामले में एक समझौता हो गया है। मैं कह चुका हूं कि इससे समस्या का बहुत सीमा तक हल नहीं हुआ है। अमरीका और चीन को प्रभावित करने वाले बड़े प्रश्न शेष हैं। दूर-पूर्वी देशों की समस्या यथापूर्व है। कोरिया के भविष्य का अभी तक फैसला नहीं हो पाया है। फारमोसा या ताईवान, या क्यूनाम तथा मत्सू के छोटे छोटे द्वीप, जिनके बारे में बहुत समय से यह मत रहा है कि द्वीप चाहे अन्य किन्हीं मामलों का फैसला हो जाये, जनवादी चीन में मिलने चाहियें—वह समस्या अभी शेष है। तो भी सभा को यह याद रखना चाहिये कि इन सब बातों के होते हुये भी समुद्री स्थिति में एक प्रकार का परिवर्तन हो गया है। अब हमने काफ़ी समय से चीन सागरों में किसी बड़े झगड़े के बारे में नहीं सुना है। चाहे कोई सरकारी समझौता हुआ है या नहीं—और कोई हुआ भी नहीं है—सच बात यह है कि लोग समस्याओं का फैसला फौजी कार्यवाही से करने के विचार से दूर भागते हैं, और शान्तिपूर्ण फैसले की अधिक उम्मीदें रखते हैं।

ये सारे परिवर्तन हुये हैं, जो यह बताते हैं—लोगों में युद्ध या, यदि आप चाहें तो, युद्ध के भय के प्रति घृणा, और समस्याओं को शान्तिपूर्वक हल करने की इच्छा का पैदा होना। मेरा ख्याल है कि यह सच है कि लोगों के विचारों में इस परिवर्तन का कारण कम से कम कुछ तो यह है कि वे नये नारिकीय अस्त्रों अणु बम और उद्जन बम और उसके उत्पादों को आश्चर्यजनक विनाशक शक्ति को महसूस करते हैं। यह एक बड़ी बात है। तो भी, मेरा ख्याल है, यह केवल वही बात नहीं है, अपितु, यदि मैं सम्मान पूर्वक कह सकूं तो, बुद्धि और सद्भावना की ओर लोगों का वापस आना, युद्ध और शीत युद्ध के लम्बे वर्गों की प्रतिक्रिया है और लोगों का उनसे परेशान होना है। क्योंकि वे महसूस करते हैं कि उन्हें उनसे कुछ प्राप्त

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

नहीं हुआ है। इससे कोई समस्या हल नहीं हुई है, इसने केवल उन्हें महान परिश्रम, उत्तेजना, क्रोध, और घृणा की ही स्थिति में रखा है। अतः इस स्थिति से उनका इस दिशा में मुड़ना है कि "अच्छा, हमें इन समस्याओं को किसी और ढंग से हल करने का प्रयत्न करना चाहिये, चाहे उनमें कुछ समय लगे।"

इस सारी परिस्थिति में भारत का क्या स्थान है? यह कहना अत्युक्ति होगा कि भारत ने विश्व की नीति में कोई बड़ा परिवर्तन किया है। हमें अपने कार्य का वर्णन बहुत बढ़ा चढ़ा कर नहीं करना चाहिये। परन्तु यह सच है कि महत्वपूर्ण अवसरों पर भारत के प्रयत्नों से कुछ परिवर्तन हुये हैं और उन परिवर्तनों के कुछ परिणाम भी निकले हैं।

पिछले कई सालों में ,भारत से कोरिया, हिन्द चीन और अन्य स्थानों पर अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व उठाने को कहा गया है। और अब, जैसा कि सभा को विदित है, यह प्रस्ताव है कि भारत को अमरीका में चीन के नागरिकों के सम्बन्ध में कुछ उत्तरदायित्व लेना चाहिये। मेरा ख्याल है कि अनुचित अत्युक्ति के बिना यह कहा जा सकता है कि भारत ने कठिनाई के समय में महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्रायः यह पर्याप्त रूप से सार्वजनकि कार्यवाही न थी—और न ही हम इसे सार्वजनकि कार्यवाही या प्रोपैगैन्डा का विषय बनाना चाहते थे। और न अब ऐसा चाहते हैं। यह सम्बद्ध पक्षों तक मित्रतापूर्ण पहुंच की साधारण कार्यवाही थी। इससे कभी कभी दूसरों को एक दूसरे के समीप लाने में सहायता मिली है। हमें कभी भी मध्यस्थ बनने की इच्छा हुई है और न ही कभी हमने मध्यस्थ के रूप में कार्य किया है। हमें इस बारे में बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिये और न ही इस रूप में कार्य करने की हमारी कोई इच्छा है। प्रायः 'मध्यस्थ' शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ लिये जाते हैं। अतः मैं इसे पूर्णतया स्पष्ट कर देना चाहता हूं। बड़े देशों के बीच मध्यस्थता का कोई प्रश्न नहीं है। हमने जिस बात का सुझाव दिया है और जिसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया है वह यह है कि ये देश एक दूसरे के आमने सामने आयें। आपस में बात करें और अपनी समस्याओं को स्वयं हल करें। यह हमारा या दूसरों का काम नहीं है कि बीच में पड़ें और उन्हें यह सलाह दें कि वे क्या करें। परन्तु कभी हम उन बाधाओं को दूर कर सकते हैं जो पिछले कुछ वर्षों में पैदा हुई हैं।

इस नई परिस्थिति में भारत का योग 'पंच शील' के दो शब्दों में या यूं कहिये कि इसमें निहित विचारों में बयान किया जा सकता है। सभा इस बात पर ध्यान देगी कि जब से इस शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के विचारों का —इन विचारों में कोई नई बात नहीं है, परन्तु फिर भी यह एक प्राचीन विचार का एक नये प्रसंग में प्रयोग है— उल्लेख और प्रयोग पहली बार किया गया था, वे केवल संसार में फैले ही नहीं हैं, उन्होंने अधिक से अधिक देशों को प्रभावित ही नहीं किया है, बल्कि उनमें उत्तरोत्तर गूढ़ता बढ़ती गई है। उनके अर्थ भी अधिक से अधिक गूढ होते गये हैं। संसार के मामलों में इसे विशिष्ट अर्थ और महत्व दिया जाने लगा है।

मैं समझता हूं कि हम शान्तिपूर्वक निबटारे के विचार को फैलाने में योग देने के लिये कुछ श्रेय ले सकते हैं। हम इसके लिये भी कुछ श्रेय ले सकते हैं कि हमने हस्तक्षेप न करने और प्रत्येक देश के, दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप किये बिना, अपना

भाग्य स्वयं गढ़ने के अधिकार को मान्यता देने के विचार को फैलाने में भी योग दिया है। यह एक महत्वपूर्ण विचार है। फिर, इस में कोई नई बात नहीं है। कोई भी महान सत्य नये विचार नहीं हो सकते। परन्तु सच यह है कि उन पर ज़ोर देने की आवश्यकता थी। इसका कारण यह है कि पिछले समय में बड़े देशों की दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप करने, उन पर दबाव डालने और यह चाहने की प्रवृत्ति रही है कि दूसरे देश उनका साथ दें। मैं समझता हूं यह बड़प्पन और छोटेपन का स्वाभाविक परिणाम है। यह हाल में ही पैदा नहीं हुआ है बल्कि इतिहास इससे भरपूर है।

किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करने पर, वह हस्तक्षेप चाहे राजनीति में हो, चाहे आर्थिक व्यवस्था में और चाहे विचारों आदि में, ज़ोर देना वर्तमान स्थिति पर विचार करने में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस बात का बहुत कम महत्व है कि अब तब इस सिद्धान्त का पूर्णरूपेण पालन न किया जाय। आप एक विधि बनाते हैं, और लोगों का यह कहना ठीक नहीं है कि किसी ने उन से उस विधि का पालन और अपराध को कराया। विधि वह है जो धीरे धीरे देश की सारी जनता के जीवन को प्रभावित करती है, हालांकि कुछ लोग एसे भी होते हैं जो उसका पालन नहीं करते हैं। मैं यह कहने की ज़रूरत नहीं समझता कि जो लोग इसमें विश्वास नहीं करते हैं धीरे धीरे करने लगेंगे।

अतः महत्व इस बुनियादी विचार का है। और फिर, इस विचार का मतलब क्या है इसका मतलब है कि उन्नति के तरीक़े अलग अलग हो सकते हैं और सम्भव है कि जो उद्देश्य प्राप्त करने हैं उनके सम्बन्ध में अलग अलग दृष्टिकोण हों। परन्तु यह भी सम्भव है कि साधारणतया वे एक ही हों। अगर मैं दूसरे शब्दों में कहूं तो, सच किसी एक देश तक या किसी विशेष देश की जनता तक सीमित नहीं है। किसी भी व्यक्ति को ऐसा सोचने के बहुत से पहलू निकलते हैं कि वह इसके बारे में सब बातों को जानता है। प्रत्येक देश और प्रत्येक व्यक्ति को, यदि वे अपने प्रति सच्चे हैं तो, अपना रास्ता जांच और गलती तथा दुःख और अनुभव का सामना करते हुये स्वयं ढूंढना पड़ता है। केवल तब ही वे आगे बढ़ सकते हैं। यदि वे केवल दूसरों की नक़ल करते हैं या नक़ल करने की कोशिश करते हैं, तो सम्भवतः परिणाम यह होगा कि वे लोग आगे न बढ़ सकें। चाहे नक़ल बहुत अच्छी हो हो, फिर भी यह उन पर लादी हुई एक वस्तु है, या ऐसी वस्तु है जो उन्होंने मस्तिष्क को उस साधारण उन्नति के बिना पाई है जो उसे उनके शरीर का एक सक्रिय अंग बनाती है।

हमने पिछले लगभग तीस सालों में एक महान नेता, महात्मा गांधी, के अधीन इस देश का विकास किया है। इस बात को एक ओर रखते हुए कि उन्होंने क्या किया या क्या न किया यह देश का एक जीवी-विकास था। यह एक ऐसी बात थी जो भारतीय भावना और विचार-धारा के अनुकूल थी। परन्तु इतने पर भी यह आधुनिक संसार से अलग न थी। यह ऐसी बात थी जो आधुनिक संसार के अनुकूल थी या जिसने अनुकूल बनने की कोशिश की। इस में सन्देह नहीं कि अनुकूलता का यह क्रम चलता रहेगा। परन्तु यह कुछ ऐसी चीज़ है जो भारतीय विचार-धारा और भावना से पैदा होती है। इस पर बाहर से सीखी हुई अनेकों बातों का प्रभाव है। क्योंकि यदि हम पिछले सैकड़ों सालों की भांति अलग अलग रहते हैं तो हम पिछड़ जायेंगे। यदि हम

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

पर दूसरे लोग छा जाते हैं, तो हमारा अपना कोई आधार नहीं रह जाता। अतः पंचशील का यह विचार, इसके अनेकों रूपों के अतिरिक्त, यह अति महत्वपूर्ण सचाई निर्धारित करता है कि अन्त में प्रत्येक राष्ट्र को अपनी रक्षा स्वयं करनी पड़ेगी। मैं फ़ौजी रक्षा के बारे में बात नहीं कर रहा हूं, बल्कि उस दिमागी, नैतिक और भावनात्मक कोशिश और उस प्रयत्न की बात कर रहा हूं जिससे दूसरों के विचारों को ग्रहण करें, और दूसरों के अनुभव से सीखने की शक्ति आती है और उस प्रयत्न का वर्जन कर रहा हूं जो स्वयं किया जाय। उन अन्य देशों को चाहिए कि बिना किसी हस्ताक्षेप या बिना अपने विचार लादने के एक दूसरे के इस कार्य को सहानुभूति और मित्रता की भावना से देखें।

अतः भारत ने यह थोड़ा सा काम किया है। पिछले कुछ सालों में भारत की जो साधारण नीति बनाई गई है, और जिस पर चलने की हम ने पूरी पूरी कोशिश की है, उसे अन्य देशों में उत्तरोत्तर मान्यता मिली है। यह संभव है कि उसे सारे देशों ने न माना हो, और वास्तव में नहीं माना है। कुछ इसके कुछ भागों को नहीं मानते या सारी नीति को ही नहीं मानते। परन्तु धीरे धीरे, भारत की नीति की निष्पक्षता में विश्वास हो गया है अर्थात्, यह एक शुद्ध भावना की नीति थी जो एक निश्चित विचारधारा पर आधारित है और इसमें किसी भी देश के लिए बुरी भावना नहीं है। यह अनिवार्य रूप से सदभावना और देशों के साथ मित्रता की भावना पर बनी थी। मेरा ख्याल है कि इस तथ्य को उत्तरोत्तर मान्यता मिली है।

सभा जानती है कि थोड़े से समय पहले मैंने कुछ देशों का काफी लम्बा दौरा किया था, विशेषकर रूस और योगोस्लाविया का। इसके अतिरिक्त, मैं चैकोस्लोवाकिया, पोलैंड आस्ट्रेलिया, रोम, इंगलैंड और मिश्र भी गया था। और अचानक जब कि मैं लौट रहा था, मैंने पश्चिमी जर्मनी का एक छोटा भाग, उसेलडार्फ़, थोड़े से समय में देखा। जहां कहीं मैं गया, मेरा अत्यधिक असाधारण हार्दिक या ऐसा स्वागत किया गया जिससे स्वाभावतः मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। परन्तु मैंने महसूस किया, जैसा कि निःसंदेह सभा महसूस करती है कि उस स्वागत का कोई वैयक्तिक महत्व नहीं था। यह भारत की मूल नीति को सराहना कर और शान्ति के पक्ष में प्रदर्शन था। यह असाधारण बात है कि जिस देश में भी मैं गया, उसी देश के लोग शान्ति के इस विचार की ओर कितने झुके हुए थे और वे केवल बुद्धिपूर्वक ही नहीं बल्कि भावनापूर्वक झुके हुए थे। और वे देश, सभा को याद होगा कि एक प्रकार के नहीं हैं। वे विभिन्न प्रकार के देश हैं तथा उनकी पृष्ठभूमि भिन्न भिन्न है तो भी यह एक सामान्य बात थी। अतः मैं ने उस स्वागत को अपने देश और उस नीति का सम्मान माना जिस पर हम चल रहे हैं।

शीघ्र ही आगामी कुछ महीनों में हमारे यहां दूसरे देशों के अनेकों सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और नेता आयेंगे। पिछले दिनों मिस्र के उप-प्रधान मंत्री हमारे यहां आये थे। उनका हमने हार्दिक स्वागत किया। क्योंकि मिस्र से हमारे अत्यधिक मित्रता के सम्बन्ध हैं। दो दिनों में लाओस के युवराज और प्रधान मंत्री दिल्ली आ रहे हैं। और आगामी कुछ महीनों में रूस के प्रधान मंत्री हमारे यहां आयेंगे। मुझे उम्मीद है कि उनके साथ उनके कुछ मुख्य साथी भी आयेंगे। इसके अतिरिक्त आगामी जाड़े में हमारे यहां आने वाले हमारे मुख्य अतिथियों में

एथोपिया के सम्राट, साउदी अरब के सुलतान, ईरान के शाह, इंडोनेशिया के उपराष्ट्रपति, कनाडा, इटली और आस्ट्रेलिया के विदेश मंत्री और जर्मनी के वाइस चांसलर हैं इन सुप्रसिद्ध महानुभावों का, जो विभिन्न विचारो का प्रतिनिधित्व करते हैं, हम समान भाव व व्यक्ति से स्वागत करेंगे । मुझे आशा है कि भारत का हृदय बहुत उदार है और वह इनमें से प्रत्येक महानुभाव के लिए मित्रता की भावना रखता है ।

मैं ने अभी एक नई ज़िम्मेदारी के बारे में कुछ कहा था जो शायद हमें उठानी होगी । यह नई ज़िम्मेदारी जनेवा में अमरीका और जनवादी चीन गणराज्य के राजदूतों के बीच हुए समझौते के बारे में है । अभी यह मामला पूरी तरह तय नहीं हुआ है परन्तु मुझे आशा है कि अगले कुछ दिनों में यह तय हो जायेगा । इस मामले में, चीन की जनवादी सरकार ने भारत का नाम अमरीका में उनका प्रतिनिधित्व करने या उनकी ओर से यह काम करने के लिए ठीक उसी प्रकार दिया था और जैसे, मेरा ख्याल है, अमरीका इंगलिस्तान का नाम चीन में उनके नागरिकों की ज़िम्मेदारी लेने के लिए दिया था । भारत के नाम का चीन की सरकार का प्रस्ताव अमरीका ने स्वीकार किया और इस तरह हम से दोनों पक्षों ने यह काम करने के लिए कहा । इन परिस्थितियों में हमें यह मानना पड़ा और हमने चीन की जनवादी सरकार और अमरीका से कह दिया है कि यदि यह ज़िम्मेदारी हमें उठानी ही है तो हम इसे पूरी करने की कोशिश करेंगे । अभी हमें दूसरी विस्तृत बातें निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हैं क्योंकि यह मामला अभी तक पूरी तरह तय नहीं हुआ है ।

मैं ने विश्व परिस्थिति की अनेकों सुखद घटनाओं का वर्णन किया 'परन्तु, अनेकों अंधकारमय स्थान भी हैं । अमरीका के उत्तर, मोरक्को और अलजीरियां में हाल में ही कुछ भयानक घटनायें हुई हैं । इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि भारत में जिसने भी उनके बारे में सुना है उसे उनसे बड़ा स्वभाविक दुःख हुआ है । इसके बारे में मैं अधिक कहना नहीं चाहता, क्योंकि हल कोई ढूंढ निकालने की कोशिश हो रही है और मैं सच्चे दिल से आशा करता हूं कि वे कोशिशें सफल होंगी, परन्तु में यह कहूंगा कि उत्तरी अफरीका के देशों में जो हो रहा है उससे केवल समूचे एशिया और अफरीका के लोगों पर ही गहरा प्रभाव नहीं पड़ा है—में आशा करता हूं कि अन्य देशों में भी पड़ा है । इसका कारण यह है कि यह सिर्फ किसी विधि और संविधान का मामला नहीं है बल्कि यह है कि आज़ादी के लिये लड़ने वाले लाखों व्यक्तियों के साथ क्या होता है । खैर, जो भी दुःखान्त घटना हो गई सो हो गई और अब हम केवल यह आशा कर सकते है कि यह इस दुःख का अन्त है, और इन देशों के लिये शीघ्र ही आज़ादी का कोई रास्ता ढूंढ निकाला जायेगा ।

अफरीका महाद्वीप के दूसरे किनारे पर दक्षिण अफरीका संघ है जो आज संसार में प्रत्येक उस बात का एक निर्लज्ज समर्थक है जिससे में समझता हूं कि केवल संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र को ही नहीं बल्कि हर जगह सभ्य मानव जाति को घृणा करनी चाहिये । वे समझते है कि वे आजकल जातिवाद और मालिक जाति के, एक ऐसी बात जिसके लिय संयुक्त राष्ट्र संघ का षणाधो पत्र मना करता है, और उस बात के, जिसके विरुद्ध पिछला विश्व युद्ध लड़ा गया था, प्रबल समर्थक हैं—और इस बारे में कोई छिपाव नहीं है, कोई पर्दा नहीं है । कोई यहां एक सरकार द्वारा एक ऐसी नीति का

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

अनुसरण करने का एक ऐसा असाधारण उदाहरण है जिससे मैं समझता हूं कि संसार में प्रत्येक विचारवान और प्रत्येक सभ्य व्यक्ति को निन्दा करनी चाहिये ।

मध्य अफरीका में बड़ा झगड़ा व आन्दोलन हो रहा है क्योंकि वर्तमान युग की एक विशेष बात अफरीका की यह जागृति है । इस देश में हम सब को उससे अत्यधिक सहानुभूति है । अफरीका का इतिहास किसी भी अन्य देश या अन्य महाद्वीप की अपेक्षा अधिक विपत्ति व दुःख का इतिहास है । यह इतिहास केवल वर्तमान काल का ही नहीं है बल्कि उस समय से सैकड़ों वर्षों का है जब कि ग़ुलाम व्यापार द्वारा वहां के अनेकों लोग पश्चिमी देशों को ले जाये गये थे । मैं सच्चे दिल से आशा करता हूं कि अफरीका के लोगों को आज़ादी मिलेगी ।

गोल्ड कोस्ट और नाइजीरिया अफरीका में उज्वल स्थानों में से हैं और मैं आशा करता हूं कि शीघ्र ही हम इन देशों का पूर्ण स्वतन्त्र देशों के रूपों में स्वागत करेंगे ।

हिन्द चीन में तीन अन्तर्राष्ट्रीय आयोग काम कर रहे हैं और उन तीनों के सभापति भारतीय हैं । दिन प्रति दिन हमारे सामने नई समस्यायें—कठिन समस्यायें—आई हैं और अब भी उनका हमें निरन्तर सामना है । परन्तु मुझे आयोगों को, और विशेषकर इन आयोगों के सभापतियों को, उनकी उस बुद्धिमत्ता और योग्यता के लिये अवश्य बधाई देनी चाहिये जो उन्होंने इन समस्याओं को हल करने में दिखाई है ।

अब मैं देश के निकट की उन समस्याओं को लेता हूं जो शायद संसार के इन मामलों की अपेक्षा हमारा अधिक ध्यान अपनी ओर खींचे हुये हैं । लेकिन मैं समझता हूं कि यह ठीक है कि हमें अपने देश के मामलों के बारे में भी संसार की स्थिति का ध्यान रख कर उचित दृष्टिकोण अपनाना चाहिये । अन्यथा हम उन पर उचित दृष्टिकोण से विचार नहीं कर सकेंगे और उनके बारे में ठीक निर्णय करने में असमर्थ रहेंगे । अतः यह बात महत्वपूर्ण है कि हम संसार के मामलों को सदैव अपने सामने रखें । प्रायः यह कहा जाता है कि विदेश नीति अन्तर्देशीय नीति का विकसित रूप है, या कभी विदेश नीति अन्तर्देशीय नीति पर थोड़ा सा प्रभाव डालती है । वे दोनों एक दूसरे को प्रभावित करती हैं । उचित नीति वह है जिसमें दोनों परस्पर सम्बद्ध हों और दोनों एक दूसरे की साहयक सिद्ध हों । इसी प्रकार, संसार में हम जिस नीति पर भी चलते हैं उस का साधारणतया अन्तर्देशीय नीति से संगत होना आवश्यक है । मेरा मतलब यह नहीं है कि प्रत्येक बात में इसका संगत होना आवश्यक है, परन्तु कुछ क्षेत्रों में ये परस्पर संगत हो सकती हैं । परन्तु इस मामले में भी उसी उदार दृष्टिकोण की आवश्यकता है । अन्यथा दोनों नीतियां असफल हो जाती हैं । इसी प्रकार कोई भी अन्तर्देशीय नीति जिस पर हम चलते हैं उन उदार नीतियों में अवश्य संगत होनी चाहियें । परन्तु यह अन्तर्देशीय या विदेश नीति का इतना प्रश्न नहीं है जितना कि यह मूल दृष्टिकोण का, जीवन तथा उसकी राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर मूल, दिमाग़ी, मानसिक और नैतिक दृष्टिकोण का प्रश्न है ।

आज कल उन समस्याओं में, जिनका प्रभाव विशेष रूप से हम पर भारत में पड़ता है, गोआ की समस्या, पाकिस्तान और श्री लंका सम्बन्धी समस्यायें हैं । पाकिस्तान के बारे में मैं इसके सिवाये और अधिक कुछ कहना नहीं चाहता कि समस्यायें चाहे कितने

ही जटिल हों, परन्तु हमने सदैव ही उनका शान्तिपूर्वक हल खोजने की कोशिश की है और आगे भी ऐसी ही कोशिश करेंगे। श्री लंका के बारे में मैं इस सभा में बता चुका हूं कि वहां की स्थिति अच्छी नहीं है। वास्तव में, यह बहुत ही असन्तोषजनक है। परन्तु अब भी हमें आशा है कि हम कोई ऐसा हल निकाल सकेंगे जो भारत, श्री लंका और हम सब से अधिक सम्बद्ध व्यक्तियों के लिये लगभग नौ लाख भारतीय उद्भव के लोगों के लिये सम्मानपूर्ण होगा।

अब मैं गोआ के प्रश्न पर आता हूं। इस सम्बन्ध में एक भावना है और इसे भारत में तथा विदेशों में समाचारपत्रों ने भी प्रकाशित किया है कि गोआ के मामले में हमारी सरकार की नीति में एक उल्लेखनीय या अचानक परिवर्तन आ गया है। कुछ लोगों का विशेषकर कुछ विदेशी पर्यवेक्षकों का, यह ख्याल है कि हमने यह परिवर्तन देशों के मत या उन की प्रतिक्रिया के कारण किया है। स्वभावतः, केवल इस मामले में नहीं अपितु प्रत्येक अन्य मामले में हमें विदेशी प्रक्रियाओं के जानने में अभिरुचि रहती है। हम पूरी तरह से जागरूक रहना चाहते हैं और जानना चाहते हैं कि संसार क्या कर रहा है और क्या सोच रहा है। हम संसार से अलग नहीं हैं। हम अपने आपको घेरे में बन्द करना नहीं चाहते।

परन्तु मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि हमने जो भी फैसले किये हैं वे हमारे उस नीति पर चलने के बारे में पूर्णतः अन्तर्देशीय फैसले हैं जिन्हें हम ठीक समझते हैं। हमने जो फैसले किये हैं उनके करने में विदेशों में हुई घटनाओं अथवा वहां कही गई बातों का तनिक प्रभाव नहीं पड़ा है।

दूसरी बात मैं इस सभा को यह बताना चाहता हूं कि नीति में कोई विपरीत अन्तर नहीं आया है। हमने निरन्तर एक ही नीति का अनुसरण किया है और विशेषकर पिछले एक वर्ष से कुछ अधिक समय से, जब से कुछ घटनायें होनी आरम्भ हुई हैं। यह ठीक है कि कभी-कभी भिन्न-भिन्न बातों पर ज़ोर दिया गया है। यह सच है कि कभी इस नीति को लागू करने में कुछ ढील बर्ती गई.. (हंसी)। हंसी का सुनना अच्छा लगता है लेकिन अगर इस के कोई मायने न हो तो यह मेरी समझ में नहीं आती।

श्री कामत (होशंगाबाद) : ठीक इसी तरह से जिस तरह इस नीति के कोई मायने नहीं हैं।

श्री जवाहरलाल नेहरू : मैं श्री कामत के समान बेकार शब्दों का प्रयोग करने में असमर्थ हूं। इसके लिये कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं है।

गोआ के बारे में हमारी नीति की बुनियादी बातें क्या हैं? पहिले, शान्तिपूर्ण उपाय हों—इस बारे में हमें स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये। यह प्रत्यक्ष है कि जब तक हमें अपनी नीतियों और व्यवहार की पूरी बुनियादों को नहीं धोते तब तक यह अनिवार्य है। अतः जो भी आदमी यह सोचता है कि गोआ के बारे में किये जाने वाले उपाय शान्तिपूर्ण न हों बल्कि और प्रकार के हों, उसको आज़ादी है कि वह वैसी राय रखे परन्तु मेरे लिये उसके साथ चर्चा करने की या बहस करने की कोई बात नहीं है। इसका कारण यह है कि हमारा अशान्तिपूर्ण ढंगों में तनिक भी विश्वास नहीं है।

श्रीमती रेणु चक्रवर्ती (बसिरहाट) : पटना के बारे में आप क्या कहते हैं?

श्री जवाहरलाल नेहरू : विपक्ष की माननीय महिला सदस्य कहती हैं : पटना के बारे में मेरा क्या कहना है? मैं उनसे

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

पूर्णतः समहत हूं । मैं समझता हूं कि पटना में बहुत से लोगों ने जिन में विद्यार्थी भी हैं और निश्चय ही पुलिस भी है, शान्तिपूर्ण ढंग से काम नहीं लिया । मेरे विचार से समय आ पहुंचा है कि जब इस देश के लोग और सारे दल यह फैसला करें कि कार्यवाही के अशान्तिपूर्ण और अनुशासनहीन ढंगों को अपनाना न ही वांछनीय है और न हीं यह हमारे देश के हित में है ।

श्रीमती रेणु चक्रवर्ती : पुलिस के बारे में आप क्या कहते हैं ?

श्री जवाहरलाल नेहरू : अगर पुलिस ग़लती पर है, तो पुलिस को सज़ा मिलनी चाहिये । पुलिस की ग़लत कार्यवाहियों का कोई भी समर्थन नहीं करता । पुलिस या किसी व्यक्ति या किसी अधिकारी की ग़लत कार्यवाही का कोई समर्थक नहीं हैं । परन्तु यदि मैं यह कहूं कि हम केवल इसी बात पर नहीं सोचते रहे हैं कि गोआ में क्या हुआ बल्कि हमने इस पर भी सोचा है कि बाद में बम्बई नगर और दूसरी जगहों में क्या हुआ ? वहां अनुसशासन भंग किया गया अशान्तिपूर्ण तरीक़े अपनाये गये । मैं इसके लिये किसी को दोषी नहीं ठहराता, लेकिन ये घटनायें यह बताती हैं कि देश में एक ऐसा वातावरण बन गया है जो सत्याग्रह आदि के किसी शान्तिपूर्ण कार्य के लिये ज़रूरी शान्तिपूर्ण वातावरण के एक दम प्रतिकूल था । यदि किसी व्यक्ति का ऐसा विचार है कि फौजी कार्यवाही या पुलिस कार्यवाही ज़रूरी और मुनासिब है, तो ठीक है, ऐसे तरीक़े भी मौजूद हैं । परन्तु यदि इसके विपरीत किसी व्यक्ति का विचार यह हो कि शान्तिपूर्ण तरीक़ों का अपनाना अत्यावश्यक है तो वह उन्हें अपनाने की कोशिश करता है । परन्तु दोनों को आपस में मिलाना दो नीतियों की बीच में पड़ना और कहीं के भी न रहना हैं ।

इस सभा में सम्भवतः ऐसे कुछ लोग हैं जिन्हें भारत के लगभग पिछले ३५ वर्षों के इतिहास का अनुभव है । जब भारत में एक महात्मा के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था, उस समय जब कभी हम शान्तिपूर्ण ढंगों से तनिक डिगे तो आन्दोलन पूर्णतः रोक दिया गया । क्योंकि हमारे नेता ने यह महसूस किया कि हमें अपने सिद्धान्त और नीति पर अडिग रहना चाहिये । उन्होंने यह भी महसूस किया कि अनुशासन भंग करने, जोश या क्रोध में आकर अगर आप चाहें तो उसे उचित क्रोध कह सकते हैं--लोगों के उस नीति से मुख मोड़ लेने से कुछ भी प्राप्त न होगा । यह चाहे जो था, परन्तु कोई भी किसी भी समय छोटा या बड़ा आन्दोलन जारी नहीं रख सकता अगर वह अपनी नीति को स्पष्ट रूप से नहीं समझता है और अगर उस नीति में किसी अन्य नीति को मिलाये बिना उस पर नहीं चलता है ।

इस मामले में 'सत्याग्रह' शब्द का प्रयोग किया गया है । मैं सत्याग्रह का प्रवर्त्तक नहीं हूं और न ही मैं अपने आप को यह कहने का अधिकारी समझता हूं कि यह क्या है । लेकिन, फिर भी हम में से कुछ लोगों मे कम से कम ३५ सालों तक एक ऐसे ढंग से काम किया है । जहां 'सत्याग्रह' हमेशा ही मौजूद था । अतः हमने जांच और ग़लतियां करके इसके बारे में कुछ सीखा है । सत्याग्रह करना सरकार का काम नहीं है । ज्यादा से ज्यादा सरकार यह कर सकती है वह सत्याग्रह के बीच में रुकावट न डाले, सत्याग्रह को बन्द न करे, क्योंकि यह उसकी विधि या साधारण नीति के विरुद्ध नहीं है । यह और लोगों का कार्य है कि वे सत्याग्रह

करें, अगर वह देश की विधि या साधारण नीति के विरुद्ध नहीं है । अतः, हम सरकार के रूप में सत्याग्रह पर बहस नहीं करते । हम किसी और रूप में या कुछ अन्य लोग इस पर विचार कर सकते हैं ।

अब मैं सभा को यह स्मरण कराना चाहता हूं कि पिछले सवा साल में, अर्थात् जब सत्याग्रह आदि की बात होनी आरम्भ हुई, नीति क्या थी ? इसमें सन्देह नहीं कि हमेशा ही और बार बार शान्तिपूर्ण ढंगों पर ज़ोर दिया गया था । दूसरे, इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि लोग सामूहिक रूप से गोआ में न घुसें । तीसरी बात यह है कि यह कार्य विशेष रूप से गोआनियों को करना चाहिये । यह, लगभग एक साल पहिले कहा गया था और बार बार कहा गया था । बाद में धीरे धीरे यह हुआ कि कुछ ग़ैर-गोआन भारतीयों ने वहां जाने वाले दलों में भाग लिया । दल छोटे छोटे थे और उनमें भारतीय कम थे । यह ठीक है यह बात होने देने के लिये हमारें ऊपर उंगली उठाई जा सकती है । इसमें कोई महत्वपूर्ण सिद्धान्त सम्मिलित न था । यह पूछा जा सकता है, "आपने भारतीयों को सत्याग्रह करने का अधिकार क्यों दिया" ? मैं यह नहीं कहता कि भारतीयों को सत्याग्रह करने का अधिकार नहीं है । इस वक्त मैं सत्याग्रह की बात नहीं कर रहा हूं । भारतीयों को गोआ की आज़ादी के लिये काम करने का पूरा हक है । मैं प्रतिबन्ध क्यों लगाऊं ? परन्तु यह बात मेरी नीति के रास्ते में बाधा उपस्थित कर सकती है । और इसलिये मैं इसे रोक सकता हूं, हालांकि विभागी तौर पर, मैं यह हक़ छीनना नहीं चाहता । इसका कारण यह है कि हमारा ख्याल था कि कहे जाने वाले सत्याग्रह में बहुत से भारतीयों को भाग लेने के परिणाम अच्छे न होंगे, इसलिये हमने इसका विरोध किया । अगर एक या दो भारतीय जाते है तो यह कोई बहुत महत्वपूर्ण मामला नहीं है, परन्तु इसमें संदेह था इसलिए बाद हमें यह बात पूरी तरह स्पष्ट करनी पड़ी । धीरे धीरे अगस्त के आरम्भ में, या इससे भी पहिले—१८ जुलाई को—भारतीयों की संख्या कुछ बढ़ गई । मैं इस सभा को निःसंकोच होकर बताना चाहता हूं कि अगस्त के आरम्भ में, अर्थात, १५ अगस्त से एक सप्ताह या कुछ दिन पहिले हम कुछ शक में पड़ गये थे, कि हम गोआ के मामले में क्या कार्यवाही करें, क्योंकि हमने देखा कि ऐसी घटनायें हो रही हैं जो हमारी बनाई हुई नीति के अनुकूल नहीं हैं । इस सारे समय में, यहां तक कि जुलाई के अन्त में भी, हमारी नीति यह थी कि लोग बड़ी संख्या में गोआ न जायें और उसमें अधिक भाग गोआनियों का हो न कि भारतीयों का । हालांकि व्यक्तिगत रूप में भारतीयों के गोआ जाने या न जाने में कोई ठोस अन्तर न था । हमें इन घटनाओं के बारे में बड़ी चिन्ता थी । हम जानते थे कि हमारे देश के बहुत से इच्छुक पुरुष और स्त्रियां आत्म-त्याग की भावना से और गोआ की आज़ादी में मदद करने की इच्छा से वहां जा रहे हैं । हमारी और नीतियां चाहे जो हों, चाहे उनकी नीतियां हमारी नीतियों से भिन्न हों, मगर जो लोग वहां गये उनके व्यक्तिगत उद्देश्यों की हम तारीफ न करें, इसकी कोई बात न थी । यही कारण है कि १५ अगस्त की सुबह जब मैं 'लाल किले' के चबूतरे से भाषण दे रहा था मैं ने कहा था कि मेरा दिल और दिमाग उन लोगों के ख्यालों से भरा हुआ है जो इस समय गोआ की सीमा पर थे । हमारे लोगों के साथ खतरें का मुक़ाबला करने में जो हुआ और जो हो सकता था उस से मेरा दिमाग भरा हुआ था । मैं चाहे सहमत हूं या न हूं मगर मेरे दिल में एक उद्देश्य के लिये ख़तरें का सामना करने

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

वाले बहादुर लोगों के प्रति अवश्य सहानुभूति है । परन्तु उस समय मुझे इसके नतीजों की अधिक चिन्ता थी । शायद हमें यह उलाहना दिया जा सकता है कि "आप ने १५ अगस्त तक मामलों को इतना आगे क्यों बढ़ने दिया" ? आलोचना का कारण उचित हो सकता है । मैं निःसंकोच भाव से यह कहना चाहता हूं कि मेरे दिमाग में यह बात साफ न थी कि मामले के इतना आगे बढ़ जाने पर उन लोगों से, जो हमारी इच्छा के विरुद्ध बहुत बड़ी संख्या में गोआ में घुसने के लिये इकट्ठे हो गये थे या इकट्ठे हो रहे थे, एक दम ऐसा न करने के लिये कैसे कहा जाये : अतः, गोआ में जो हुआ, १५ अगस्त को हुआ । बाद में, इस स्थिति पर हम सब को बहुत सोचना पड़ा । उससे हम इस नतीजे पर पहुंचे कि हमें गोआ के मामले में अपनी बुनियादी नीतियों पर ज़ोर देना चाहिये । हमने यह भी फैसला किया कि वर्तमान परिस्थितियों में हमें इस नीति के बारे में कोई भी सन्देह नहीं रहने देना चाहिये । मैं कह चुका हूं कि हमारे खिलाफ़ उचित रूप में यह कहा जा सकता है कि हमें कुछ घटनाओं के बारे में शक था । इस लिये हो सकता है कि आम लोग भी हमारी नीति को स्पष्टतः न समझ सके हों । हम पर यह आरोप लगाया जा सकता है और मैं समझता हूं कि सम्भवतः इसमें कुछ औचित्य भी है, हालांकि बुनियादी नीतिय पिछले सवा साल से पूर्णतया स्पष्ट हैं । कुछ भी हो हमने यह महसूस किया कि अब यह जनता के लिये या हमारें लिये या गोआ जाने वाले किसी भी व्यक्ति के लिये ठीक नहीं है कि हम अपने दिमाग़ों में ज़रा सा भी शक़ रखें । इसलिये हमने तय किया कि सत्यागृह यहां तक कि व्यक्तिगत सत्याग्रह भी न करने दिया जाये । वास्तव में यह स्पष्ट है कि १५ अगस्त को इतने बड़े पैमाने पर की गई कोशिश के तुरन्त बाद कुछ व्यक्तियों की कोशिशों पर वापस आने के कोई मायने नहीं हैं । मैं ऐसा किसी सिद्धान्त के आधार पर नहीं, बल्कि नितान्त व्यवहारिकता के आधार पर कह रहा हूं । इससे आन्दोलन का नैतिक और भौतिक महत्व जाता रहता है । माननीय सदस्यों ने समाचारपत्रों में पढ़ा होगा कि पुर्तगालियों ने कुछ लोगों को कैसे हिंसा पर तुले 'सत्याग्रही' कहना आरम्भ कर दिया है । मैं उनके बारे में कुछ नहीं जानता । मेरा ख्याल है कि कुछ ऐसे छोटे छोटे दल हैं, या स्वयं गोआ में कुछ ऐसे छोटे छोटे दल हैं, जिन्होंने एक छोटे से पुल के तोड़ने या कुछ ऐसी ही तोड़फ़ोड़ के काम किये हैं ।

श्री के० के० बसु (डायमंड हार्बर) : क्या पुर्तगालियों द्वारा सत्याग्रहियों के बारे में कही गई बातों की जांच करने का कोई स्वतन्त्र साधन है ?

श्री जवाहरलाल नेहरु : मैं ने अभी कहा था कि समाचारपत्रों में समाचार छपे हैं । उन समाचारों के सच होने में मुझे कोई सन्देह नहीं है कि पुर्तगाली कहते हैं कि हिंसा पर तुले हुये सत्याग्राहियों ने यह किया है वह किया है । मैं जो बात कहने की कोशिश कर रहा था वह यह है । छोटे या बड़े दलों में बहुत से ऐसे लोग हैं जो अपने आप को कभी भी सत्याग्राही नहीं कहते । उन्होंने कुछ तोड़फ़ोड़ की है । थोड़े से व्यक्तिगत सत्याग्रहियों के ये काम, हालांकि यह उससे बिल्कुल भिन्न है, उस अन्य काम में मिलना चाहते हैं । या हालांकि हम कह नहीं सकते— कि यह ठीक है या नहीं, पुर्तगाली लोग इसे मिलाते हैं । अभी मैं व्यावहारिक पहलू के बारे में कह रहा था । परन्तु आज मैं इस सभा में इस व्यावहिरक पहलू पर ज़ोर

देने की कोशिश न करके इस मामले के बुनियादी सवालों पर ज़ोर देने की कोशिश कर रहा हूं। मुझ से पूछा जाता है, "इस तरह के सत्याग्रह का विकल्प क्या है ?" इसके उत्तर में मैं भी प्रश्न करने वाले से पूछ सकता हूं "आप जिन तरीक़ों का सुझाव देते हैं, उनसे आप वास्तव में क्या प्राप्त करना चाहते हैं ?" स्पष्ट है कि इस तरह मामलों से एक दम स्वयं कोई हल नहीं निकलता। सभा को विदित है कि हमने अनेकों आर्थिक, वित्तीय और अन्य कार्यवाहियां की हैं। मुझे इसमें कोई शक़ नहीं है उनका काफ़ी असर पड़ता है। आगे हम जो कार्यवाही करेंगे उसके साथ उनका असर और भी बढ़ जाता है। इस मामले को हल करने के यह साधारण उपाय हैं। याद रखिये कि हम ऐसा सोचने में फौजी या पुलिस कार्यवाही का परित्याग कर रहे हैं। हमने उसका ख्याल छोड़ दिया है। फिर हम सोच रहे हैं कि हम और क्या कार्यवाही करें। मेरे दिमाग़ में ज़रा भी सन्देह नहीं है कि हमने जो भी कार्यवाही की है तथा परिस्थितियों में जो भी परिवर्तन हो रहे हैं अन्ततः उससे गोआ को पुर्तगालियों से आज़ादी अवश्य मिलेगी। मैं इसकी कोई तारीख़ मुक़र्रर नहीं कर सकता। मैं नहीं समझता कि संसार में कोई भी व्यक्ति संसार की किसी भी समस्या के लिये कोई तारीख़ मुक़र्रर कर सकता है। चाहे ये मामले योरोप के हैं या जर्मनी के या योरोप के अन्य भागों के, सुदूरपूर्व के हैं या हिन्द चीन के, या अफरीका के हैं या किसी अन्य भाग के, मगर उनके बारे में कोई तारीख़ मुक़र्रर नहीं की जा सकती। परन्तु, मुख्य बात यह है कि जिन नीतियों पर चला जाता है वे ठीक हों। मेरा अवश्य ही यह विश्वास है कि अच्छे आचरण का अच्छा फल होना आवश्यक है ठीक उसी प्रकार जैसा कि बुरे आचरण का बुरा फल होता है। इस बारे में मुझे तनिक सन्देह नहीं है। मेरा ख्याल है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काम करते हुये हम किसी और तरीक़े को नहीं अपना सकते हैं।

गोआ मे बीसवीं शताब्दी में सोलहवीं शताब्दी द्वारा बीसवीं शताब्दी, जागृत एशिया से ख़त्म होने वाले उपनिवेशवाद के सामना करने का और पुर्तगाली अधिकारियों द्वारा स्वतन्त्र भारत के किये जाने वाले अपमान की, और पुर्तगाल के इस ढंग से काम करने का चित्र हमारे सामने आता है जो किसी भी विचारशील व्यक्ति के लिये आधुनिक संसार में इतना अनर्गल और आश्चर्यजनक है कि वह चौंक पड़ता है। यह किसी साधारण तर्क या कार्यवाही का साधारण विरोध नहीं है।

गोआ में जो हो रहा है उसकी विदेशों में क्या प्रतिक्रिया हुई है, यह हमने रुचिपूर्ण देखा है। हो सकता है कि अन्य सदस्यों ने भी देखा हो। गोआ न केवल ख़त्म होने वाले ऐसे उपनिवेशवाद का प्रतीक है बन गया है जो अब भी बने रहने का प्रयत्न कर रहा है, बल्कि इससे अधिक कुछ हो गया है। यह एक कसौटी बन गया है जिस पर हम अन्य देशों की नीतियों की परख कर सकते हैं। क्या कोई देश गोआ में पुर्तगाली हठधर्मी का सक्रिय समर्थन करता है या उसे सक्रिय प्रोत्साहन देता है ? यदि हां, तो इससे हम जान लेंगे कि संसार के मामलों में उस देश का क्या दृष्टिकोण है। या, कोई ऐसे देश हैं जो इस स्थिति में निष्क्रिय समर्थन करते हैं ? हम जानते हैं कि उनकी दृष्टि क्या है ? या, क्या वे देश यह महसूस करते हैं कि गोआ में पुर्तगाली शासन नहीं रह सकता और न रहना चाहिये, क्योंकि यह सभ्य मानव जाति के लिये चुनौती बन गया है। विशेषकर, वहां पुर्तगाली अधिकारियों के पाशविक और असभ्य व्यवहार के पश्चात्। अतः मैं इस सभा से निवेदन करता हूं कि गोआ

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

के बारे में जो भी नीति बनाई है वह ठीक नीति है । समय समय पर छोटे छोटे परिवर्तन हो सकते हैं । परन्तु उस नीति की बुनियादी बातों में तब तक कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिये जब तक कि हम अपने देश और विदेश में किये गये काम को, तथा अपनी राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों को मिटाकर कोई ऐसा रास्ता अपनायें जिसकी हमें कोई इच्छा नहीं है । और मैं कहता हूं कि यह नीति जो संसार की इस बड़ी नीति और हमारी राष्ट्रीय दृष्टि के अनुकूल है ऐसी नीति है जो सफल होगी । यह केवल सैद्धांतिक नीति है, बल्कि व्यावहारिक नीति है । मुझे यक़ीन है कि इस मामले के बारे में केवल सदस्यों के ही दिमागों से नहीं बल्कि अन्य लोगों के भी दिमागों से सारे सन्देह दूर हो जायेंगे । फिर, वे यह भी महसूस करेंगे कि पिछले वर्ष में हम इसी नीति पर चले हैं । यह ठीक है कि हाल में इस नीति के बारे में कुछ भ्रम हो गया था और हमने स्थिति में थोड़ी लापरवाही बरती । इसके लिये आप लोग हम पर उंगली उठा सकते हैं । लेकिन जैसे ही हमने देखा कि इसका नतीजा क्या हो रहा है, कि यह हमें ग़लत रास्ते पर ले जा रही है, हमने अपने आप को संभाल लिया । और कोई भी सरकार, जो यह महसूस करती है, साहस होते हुये इस बुराई को रोकने से पीछे नहीं हट सकती । मेरा ख्याल है कि हमने, देश ने और सरकार ने, इस मामले में अपने आपको और संसार को साहस दिखाया है । इसके यह मायने नहीं हैं कि गोआ के सम्बन्ध में हमारी सरकार ने तनिक भी लापरवाही की है । मैं चाहता हूं कि भारत के बाहर लोग इस बात को पूरी तरह समझ लें । हाल के महीनों में जो भी हुआ है उससे यह एक महत्वपूर्ण सवाल बन गया है । हो सकता है कि यह एक अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रश्न न हो । क्योंकि यह अनिवार्य है कि गोआ भारत में मिल कर रहेगा, कि पुर्तगाल यह जानता है कि उसे भारत छोड़ना होगा और यह कि तब गोआ को अनिवार्य रूप से भारत संघ के साथ मिलना होगा । परन्तु पहिली बात यह है कि गोआ को आजाद कराया जाये । यदि साधारण क्रम में इस में कुछ समय लगता है, तो कोई विशेष बात नहीं है । अनेकों ऐसे मामले हैं जिनमें वक्त लगता है । सभा जानती है कि चीन और इंडोनेशिया के कुछ थोड़े से क्षेत्र पुर्तगाल के अधीन हैं, और वह स्थिति अब भी चल रही है । चीन की जनवादी सरकार इस से अत्यधिक भड़क नहीं उठती कि मकाओ पुर्तगाल के अधीन है । मकाओ उन्हें मिलेगा इसमें कोई शक नहीं है, और प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है । लेकिन वे भड़कते नहीं हैं । उनकी फौजी ताक़त कमज़ोर नहीं है । अगर वे इसे लेना चाहें तो यह उनके लिये छोटी सी बात है । लेकिन वे इसे अपनी बड़ी नीतियों की वजह से लेना नहीं चाहते । पुर्तगाल की और भी बस्तियां हैं । इसलिये यह बात कि किसी मामले में कुछ अधिक समय लगता है या नहीं, साधारणतया कोई विशेष बात नहीं है । मगर पिछली घटनाओं ने गोआ के मामले को अधिक महत्वपूर्ण विषय बना दिया है । इनसे हम में और देश में कुछ जोश आ गया है । इस लिये हमें इस मामले पर अपनी सारी बुद्धि और ताकत से काम लेना है और इस से एक प्रश्न को ऐसे ही नहीं रहने देना है । मैं आशा करता हूं कि अन्य देशों के लोग यह महसूस करेंगे ।

अध्यक्ष महोदय : प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ :

"कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और उसके बारे में भारत सरकार की नीति पर विचार किया जाये ।"

इसके स्थान पर कुछ अन्य प्रस्ताव भी हैं। माननीय सदस्य उन्हें प्रस्तुत कर सकते हैं।

श्री रघुरामैया (तेनाली) : मैं प्रस्ताव करता हूं कि मूल प्रस्ताव के स्थान पर यह रखा जाये :

> "यह सभा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और उसके सम्बन्ध में भारत सरकार की नीति पर विचार करने के पश्चात् सरकार द्वारा अनुसरित वैदेशिक नीति का अनुमोदन करती है जिसके फलस्वरूप कई देशों ने पंच शील के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कम हो गया है, जिससे विश्व शान्ति के कार्य में सहायता मिली है।"

अध्यक्ष महोदय द्वारा श्री रघुरामैया, श्री वी० जी० देशपांडे तथा श्री एन० सी० चटर्जी के प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये।

श्री अशोक मेहता (भंडारा) : मैं इस अवसर की प्रतीक्षा में था कि मैं प्रधान मंत्री की अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने सम्बन्धी कार्य के लिये सराहना करूं परन्तु दुर्भाग्यवश गोआ की दुर्घटनाओं के कारण वृहद् समस्याओं पर ध्यान देना असम्भव सा हो जाता है। परन्तु सरकार की गोआ नीति की आलोचना से पूर्व, मैं अपने अनुपस्थित नेता के शब्दों को दोहराता हूं कि विदेशी नीति किसी दल विशेष की नीति न हो कर राष्ट्र की नीति होनी चाहिये। हमारी सर्वदा यही शिकायत रही है कि जिस प्रकार अन्य लोकतन्त्रों में विरोधी पक्ष पर भी विश्वास किया जाता है उसी प्रकार विदेश नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन से पूर्व विरोधी पक्ष की भी सलाह लेनी चाहिये। कहा जाता है कि इस देश में बहुत से दल हैं तथा उसमें से किसी दल विशेष के परामर्श के अभिप्राय से छांटना कठिन है। परन्तु मैं बता देना चाहता हूं कि चुनाव आयोग ने यह बताया था कि प्रशासक दल के अतिरिक्त तीन दल और हैं जिनको राष्ट्रीय दल कहा जा सकता है। इसलिये मैं नहीं समझ सका कि प्रधान मंत्री विदेश नीति में परिवर्तन के समय विरोधी पक्ष की सलाह क्यों नहीं लेते। मेरे विचार से केवल इसलिये कि विदेश नीति के निर्णय फैले नहीं परन्तु केवल सभा के कुछ व्यक्तियों पर विश्वास करने में कोई कठिनाई नहीं है।

[पंडित ठाकुर दास भार्गव पीठासीन हुये]

सत्य यह है कि विदेश नीति की पूर्णतया आलोचना हम कर ही नहीं सकते क्योंकि हम सभी सूचना केवल समाचार पत्रों से लेते हैं तथा संसद् सदस्य होने के नाते हमको इससे अधिक जानने का अवसर ही नहीं दिया जाता है।

हमारे प्रति प्रधान मंत्री का इतना रोष होने पर भी हम सर्वदा उनकी विदेश नीति का समर्थन ही करते आये हैं। प्रधान मंत्री ने प्रायः यह कहा कि काश्मीर, गोआ तथा पाकिस्तानी उलझनों का लाभ उठाने का प्रयत्न विरोधी करते हैं। परन्तु मैं यह बता देना चाहता हूं कि प्रधान मंत्री तथा उनके दल ने विदेश नीति के द्वारा ख्याति प्राप्त की है। भारत की विदेश नीति का श्रेय केवल कांग्रेस दल के कारण ही नहीं प्रत्युत, जैसा कि प्रधान मंत्री ने स्वीकार किया कि इस कार्य के लिये उसके पीछे समस्त देश है तथा उस आन्दोलन के आदर्श हैं जिसमें हम सब एक थे। तथा इसीलिये प्रधान मंत्री के साथ हैं।

गोआ नीति को लीजिये। १५ अगस्त, १९५४ को गोआ, दमन, तथा दीव के निकट बहुत से सत्याग्रही एकत्रित हो गये थे। परन्तु ठीक १५ अगस्त की प्रातः प्रधान मंत्री ने घोषणा की कि उन को जाने की